२० इग्यारमां व्रत की ढाल ११४
२१ बारमां व्रत की ढाल १२१
२२ ६६ अति चार की ढाल १३८

॥ श्री जयाचार्य्य कृत ॥

२३ पडिमा धारी श्रावक की ढाल ... १४२

॥ गुलाबचन्द कृत ॥

२४ तीन मनोरथ की ३ ढाल १५३
२५ दश विध श्रावक आराधनां की १३ ढाल ... १६२

॥ स्वामी श्री भीखणजी कृत ॥

२६ श्रावक गुणां की ढाल २०४

॥ गुलाबचन्द कृत ॥

२७ जिन आणां धर्म स्तवनम् २०७
२८ जिन मार्ग ओलखना स्तवनम् ... २१०
२९ असंयम जीव तव्य वर्जनीय ढाल ... २१४
३० दया धर्म वर्णन् ढाल २१७
३१ कलश २१९

---

* श्री *

॥ मङ्गला चरणम् ॥

॥ दोहा ॥

प्रणमूं श्रीअरिहन्त नित, द्वादश गुण संयुक्त ॥
दुष्ट कर्म अरू प्रते, हणिया वरवा मुक्ति ॥ १ ॥
कारज सिद्ध सकल करी, थये सिद्ध भगवन्त ॥
अष्ट गुणे युत ते नमूं, पाया सुक्ख अनन्त ॥ २ ॥
आचारज वन्दू सदा, गुण षट्तीस सु आर्य्य ॥
उपदेशक जिन धर्मनां, सारण वारण कार्य्य ॥ ३ ॥
श्रुत ज्ञान द्वादशांग को, पढ़ै पढ़ावे सार ॥
पंचवीस गुणधर सदा, उपाध्याय अणगार ॥ ४ ॥
फुन प्रणमूं सब साधुजन, साधे शिव-मग तेह ॥
सप्त बीस गुण शोभता, पञ्चाचार पालेह ॥ ५ ॥
सुमरूं श्रीभिक्षू गुरू, प्रबल बुद्धि भण्डार ॥
प्रगटे पंचम अरक में, कियो बहोत उपकार ॥ ६ ॥
दया धर्म प्रभुजी कह्यो, आगम मांहि विचार ॥
भिक्षू तास भलीपरें, उलखायो तन्तसार ॥ ७ ॥
तसु अष्टम पट शोभता, कालू गणी गुणगेह ॥
तन मनसे सेयां थकां, पाप विघ्न मेटेह ॥ ८ ॥
विनय मूल जिन धर्म है, तेहनां दोय प्रकार ॥
श्रमण पंच महाव्रत मयी, श्रावक द्वादश धार ॥ ९ ॥

जिन आज्ञा है व्रत मे, अव्रत आज्ञां बार ॥
न्याय दृष्टि करि देखिये, पक्षपात सब टार ॥ १० ॥
तीन गुप्ति पांचूं सुमति, पंच महाव्रत मान ॥
पालै ते प्रभु पंथमें, अन्य घनेरा जान ॥ ११ ॥
संवरनें वलि निर्जरा, एहिज तेरो पंथ ॥
चालै तुज कहि चालमें, श्रावकनें निग्रन्थ ॥ १२ ॥
सरल भाव हृदयें धरी, सांभलिए जिन वान ॥
गुलाब कहै व्रत आदरो, भाख्यो श्रीवर्द्धमान ॥ १३ ॥

श्री

॥ श्री जैन धर्मो जयति ॥

॥ श्रीसुगुरुभ्यो नमः ॥

अथ श्रावक धर्म विचारः

श्रावक धर्म क्या है जिसको प्रायः सब ही सम्यग्दृष्टि जीव जाने हुए हैं। लेकिन बहुत से अज्ञानी जीव भ्रमवश-मदान्ध होके श्रावक के खाने खिलाने आदि संसारी कर्तव्यको भी श्रावक धर्म समझे हुए हैं कहते हैं श्रावक धर्म अलग है और श्रमण धर्म अलग है परन्तु मिथ्यात्व मोहनीय की प्रबलोदय से यह नहीं जानते कि परस्पर खाना खिलाना तो संसारी व्यवहार इन्द्रिय पोषण है, वो "आस्रव है" यदि श्रावक धर्म अलग है तो संसारी कर्तव्य सी या जिनाज्ञासे ऐसा विचारणा अवश्य ही चाहिये, संसारी कर्तव्यमें जिनाज्ञा कदापि नहीं है, जिस कार्य में जिनाज्ञा है वो ही कार्य निरवद्य और धार्मिक है

उसी कर्तव्यसे अशुभ कर्म निर्जरते हैं और पुन्य बन्ध होता है, जिस कार्यमे जिनाज्ञा नहीं है उस कार्य मे एकान्त पाप कर्म का बन्ध है और किंचित् मात्र भी धर्म नही है, तो बुद्धिमान् जन सहजमे समझ सकते हैं कि श्रावक के खाने खिलाने मे जिनाज्ञा नहीं है तो यह श्रावक धर्म नही है, अव्रत है। सम्यग्दर्शन पाके हिन्सा, झूठ, चोरी, मैथुन परिग्रहादि आस्रव द्वारोंमे जितना २ प्रवर्तता है वो श्रावक धर्म नही है "अव्रतास्रव है" और अव्रतास्रव द्वारा पाप कर्मका बन्ध भगवाननें कहा है अव्रतके सेनें सेवानें भले जानने मे पाप है।

श्रीतीर्थंङ्करों नें दोय प्रकारके धर्म प्ररूपे हैं श्रमण धर्म १ श्रमणोपाशक धर्म। श्रमण धर्म तो पञ्च महाव्रत रूप और श्रमणोपाशक धर्म द्वादश व्रत रूप है। साधूके सर्व प्रकारे सावद्य कर्म करनें करानें अनुमोदनें का मन, वचन कायासे त्याग है इस से साधूका शरीर अधिकरण नहीं है उनके किसी प्रकारका पाप कर्म करनें करानें अनुमोदनेंका आगार नही है तब ही सर्व व्रती संजती कहाते हैं।

श्रावक सर्व व्रती नहीं है "देशव्रती है" सावद्य के त्याग हैं वो देशव्रत संवर है, जीवा जीवादि नव तत्वों को यथार्थ समझना शुद्धदेव शुद्धगुरु शुद्धधर्म की परीक्षा करके जिन वचनों की (आस्था) प्रतीति रखके श्रीजिन प्रणीत तत्वोंका शुद्ध श्रद्धान बिना चारित्र नही होता चारित्र के बिना मोक्ष नहीं होता।

अनादि कालसें जीव पाप कर्मोपार्जन करके चतुर्गति संसाररूप अटवीमें परिभ्रमण कर रहा है अपने स्वभाव को भूलके परभावमें लिप्त हो रहा है मोह वश अपणी पवित्र आत्माको भव सागरमें डुबो-रहा है इसका मुख्य कारण "मिथ्यात्व" ही है, मिथ्यात्व से ही जीव ज्ञानावरणीयादि अशुभ कर्मा-ष्टक के पुंजके पुञ्ज संग्रह करके नरक निगोदादि दुःखोंके भोगी होते हैं।

अठारे प्रकार के पाप कर्मोंमें मिथ्यादर्शन सल्यही मुख्य है, इसलिये सद्गुरू का कहना है हे देवानुप्रिय जहांतक बनें वहां तक "सम्यग्दर्शन" पानेका उद्योग ही करना उचित है, मिथ्यामयी निद्रामें सोते हुए बहुत समय व्यतीत हुआ, क्या

अभी तक इस निद्रामें सोते ही रहोगे देखो इस निद्रानें तुम्हारा आत्मगुण दबाया है तुम कैसे हो और अब किस तरह हो रहे हो, यदि अब सुसंग प्राप्तकर भी नहीं जागोगे तो फिर कब जागोगे, यह मनुष्य जन्म आर्यक्षेत्र उत्तमकुल दीर्घायु पूर्णेन्द्री सद्गुरु संयोग पाना महा मुश्किल है ।

सद्गुरु संयोग से ही सब बातें जानी जाती है सम्यग्दर्शन सूर्योदयसे ही मिथ्यामयी महान्धकार दूर होता है, श्रीजिनराज देवनें ज्ञान १ दर्शन २ चारित्र ३ तप ४ ही मुक्ति मार्ग कहे है, इस लिये पूर्वोक्त चातुर्मार्गको साधना करो, अपने आत्महित पथको छोड़कर अपने सरल और विनयी राह को त्यागकर जगत्पूज्य ऋषीमार्गको भूलकर, तुम किस मार्गको भटकते जारहे हो, यह तुम्हारा मार्ग नहीं है, कुमार्गको छोड़कर सुमार्ग में आना ही परमप्रिय और मोक्षदाई है, ज्ञानवृद्ध संजमी प्राचीन ऋषिगण जिस मार्ग चले है और कह गये हैं उसी मार्गपर चलनेसे आत्मशक्ति प्रगट होगी और अनन्त सुखोंके भोगी होंगे, अन्यथा आत्मशक्ति लुप्त होनेका ही

उपाय है, जरा ज्ञान नेत्र खोलके देखो संसार बढ़ने का मार्ग कैसा है।

प्रवृत्ति

संसारी कर्तव्योंकी प्रवृति मार्गको छोड़कर निवृत्ति मार्गका अवलम्बन करो प्रवृत्ति मार्गसे जन्म जरा मरणादि दुःखोंका समूह बढ़ता है यदि तुम सदा सर्वदा अचल अटल रहना चाहते हो तो अपने जिन प्रणीत निवृत्ति मार्गको ग्रहण करो अजरामर होनेका एक यही उपाय है, प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग क्या है पहले इसको समझो, प्रवृत्ति मार्ग है जिनाज्ञा बाहर संसारी कामों में प्रवर्त्तना, गृहस्थाश्रमी अज्ञानी जीव और हिन्सा धर्मी कुगुरुओं का कहना है, अर्थ बलसे बलवान् होनेकी चेष्टा करो, अर्थ हीन होके किसी विषय मे भी सफलता नही प्राप्त कर सकोगे, वाणिज्य में प्रवृत्त हो, अर्थ संग्रह के लिये. गिरिश्रृङ्ग मरूभूमि समुद्रोल्लङ्घनादि घने जङ्गलों में विना विचारे चले जाओ, चाहे जमीन खोद भूगर्भमें प्रवेश कर रत्न संग्रह करो, समुद्रके भीतर गोता लगाकर मोती निकाल ल्यावो, यही क्यों जिस तरह बनसके जिस तरह अर्थ संग्रह करो,

रुपया बड़ी चीज है किसी प्रकार रुपया तुम्हारे पास होजाय फिर संसार मे तुम्हारे लिये कोई चीज भी दुःप्राप्य नहीं रहेगी, इससे जिसतरह बनें उसी तरह धन धान्यादिक का संग्रह करो, और "निवृत्ति" मार्ग है इनसे [निवर्त्तना] छोड़ना, चतुर्दश-पूर्वधर गणधरोंने ज्यो वचन श्रीजिनेश्वर महाराजसे सुनके शास्त्र रचे हैं उन शास्त्रोंके वाक्य है [धर्मो मंगल मुक्किट्टं अहिंसा संजमो तवो] 'अहिंसा परमो धर्मः और उत्कृष्ट मङ्गलं ऋषिगण बारम्बार कह रहे हैं' अर्थ ही अनर्थ का मूल है, यह बात सदैव ध्यानमें रखना यदि अमर होना चाहो तो निर्लोभ हो, धनको लालसा छोड़ दो, वचन निर्वद्य और सत्य कहो, अदत्त ग्रहणको त्यागो, ब्रह्मचर्य्य धारो, संजमी हो, तपस्वी हो।

अब न्यायाश्रयी और तत्वज्ञ पुरुष विचार सकते हैं प्रवृत्ति और निवृत्ति में कितना फरक है, शुद्ध नीतिसे विचारकर देखो तो साफ साफ मालूम होता है प्रवृत्ति मार्गसे निवृत्ति मार्ग एकदम विरुद्ध है, संसारका रास्ता और धर्मका रास्ता अलग २ है, ज्ञान दर्शन चारित्रादि शिव मार्ग हैं, ज्यो जीव समदृष्टि होगा वह एकाएक कुकर्म करने से डरेगा यथाशक्ति

यम नियम अङ्गीकार करेगा, पापके कामोंमे पाप, और धर्मके काममें धर्म समझना ही सम्यग्दर्शन है, जहां तक सम्यग्दर्शनका बल है, तहां तक नरक निगोद तिर्यंच मनुष्य गतिका आयु बंध नहीं होता, यदि होय तो देवायु हो, यही क्यों देव गतिमे से भी केवल वैमानिक देवायु ही बांध सकता है, कहिये कितना बड़ा महात्म्य सम्यक्तका है, सिर्फ यही नहीं सम्यग्दर्शन पानेसे बहुत से गुण उत्पन्न होते हैं, सम्यग्दर्शनी जीव चारित्र मोहनीय क्षयोपसमानुसार व्रत धारणकर देश व्रती या सर्व व्रती गुणस्थान प्राप्त करते हैं सम्यग्दर्शनीके संवर पदार्थ अकर्त्तापणा जो जीवका खास गुण है वो प्रगट होता है।

मिथ्यात्वी जीव अनेक तरह के कष्ट सहन कर तप जप शील सन्तोषादि सुकार्य्य करता है लेकिन संवर पदार्थ की प्राप्ति उन्हे नहीं होती निर्जरा धर्मी ही है, सूत्रोंमें कहा है बाल अज्ञानीका मास मास क्षमणतप सम्यग्दृष्टि के व्रत पच्चक्खाण के फलके षोड़सांश नहीं आता, सोलवें ही क्या, हजारवें लाखवें करोड़ वें यावत् संख्यात असंख्यातवें भाग भी

नहीं पासकता, सम्यक्त्वी के संवर भी निर्जरा दोनू धर्म है एक वक्त सम्यक्त्व पाजाने से अनन्त संसारीका प्रति ससारी होता है, इस लिये कहना है सम्यक्त्व का पाना ही दुर्लभ है शास्त्रोंमें कहा है, चत्तारि परमङ्गाणि दुल्लहाणीह जंतुणो माणुसत्तं। सुयीसद्धा संजमंमीय वीरियं ॥ १ ॥

अर्थात्—मनुष्य भव १ श्रुत कहिये सिद्धान्त श्रवण २ सत्य श्रद्धान ३ संजममें बल पराक्रम ४ यह च्यार परम अङ्ग जीवको अति दुर्लभ हैं।

तथा कहा है—"सद्धा परम दुल्लहा" याने सुद्ध सरधना महा दुर्लभ है, श्री वीतराग प्रभुने केवल ज्ञान केवल दर्शनसे लोकाऽलोक के भाव देखा, वैसाही कहा है उनके वचन सुनके यथार्थ श्रद्धाकरना और आस्था प्रतीति रखना उसीका नाम सम्यक्त है, सम्यग्दृष्टि के जिन वचन ही अर्थ परमार्थ है, जिन प्रणीत धर्म से उनकी हाड और हाड़ों की मींजी रंगी हुई है वह समदर्शी देवताओं के डिगाए भी नहीं डिग सकते, सम्यग्दर्शन में ही सदा अचल और अटल है, स्वामी भीखनजी ने भी ढालमें कहा है,—"दिढ़ समकित धर थोड़ला" याने दृढ़ सम्यक्त्व धारी बहुत

थोड़े हैं. स्वामी भीखनजी कौन थे कब हुए और कैसी प्ररूपणां करी यदि इन सब बातोंको यथार्थ जानना है, तो भिक्षु चरित्र वाचने से मालूम हो जायगा, स्वामी भीखनजी इस भरत क्षेत्र पंचम कालमें मानूं जिनराज वत् हो गये हैं।

जैसा रागद्वेष रहित निर्मल मार्ग श्रीवीतराग प्रभुका है क्यो श्रमण माहणका आदेश और उपदेश मतइण् मतहणों है, वोही आदेश और उपदेश स्वामी भीखनजी का है, साधू और श्रावक धर्म श्रीवीर-प्रभुने सूत्रोंमें कहा है, वैसाही कथन स्वामीजी का है, लेकिन वहुतसे लोग कहते हैं भीखनजीने दयाधर्म को उठादिया और गुरूसे लड़ झगड़ के अलग हो अपना मजहव अलग जमालिया इत्यादि अनेकानेक बातें मनमाने सो भोले भाले लोगोंको बहकाने के लिये या अपनी उन्नति के लिये कह रहे हैं मगर न्यायवादी पुरुषको जरा सोच विचार लेना परमा-वश्यक है देखो श्रीभगवानने तो कहा है पृथ्वी आदि षट् कायोंके जीवोंको न मारना, न मराना, न अपने शरीरसे किसी प्राणीको कष्ट देना; भय नहीं उप-जाना, वो ही अभय दान है परन्तु एकेन्द्रियको मार-

कर पंचेन्द्रियको साता उपजाने मे धर्म नहीं कहा है असंजतीका जीवितव्य और बाल मरण, वांछणे में एकान्त पाप ही कहा है। धर्माथं हिंसा करने में दोष नहीं यह वचन अन्यतीर्थियों के है श्रीआचाराङ्ग सूत्रमें खुलासा कहा है, ऐसी अनेक बातें स्वामी भीखनजीने कही है—न्यायाश्रयी पुरुष पक्षपात छोड़कर स्वामी कृत ग्रंथ चोपाई बोल थोकड़ा ढाल स्तवन वगैरह पढ़ेंगे तो साफ मालूम हो जायगा कि स्वामी की प्ररूपणा और भगवानकी प्ररूपणामे फरक नहीं है। मोक्षाभिलाषी जीवोंको तवही कहते हैं कि हे प्रियवरों यह मनुष्य जन्म, आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल, पाया है तो शुद्ध संजम पालने वाले मुनिराजों से सूत्र सिद्धान्त श्रवण करो, जिन वीर प्रभुको सर्वदर्शी सर्वज्ञ मान रहे हो तो उन्होका कथन जो जिनागम हैं सो सुनो, केवल सुनके ही न रहो सत्य सरधो और यथा शक्ति व्रत धारण करो, अव्रत घटावो, तब इस जीवका भला होगा, भ्रष्टाचारियों की संगतसे पक्ष पातमें पड़के शुद्ध आचार पालने वालोंकि निन्दक मत बनो, शुद्ध पंचमहाव्रत पालने वाले, ४२ दोष टालकर आहार पानीके लेने वाले, पंचेन्द्रीकि विषयों की जीतने वाले जतीलोगोंकि उपासक बनो तब सब

बातें जो सूत्रोंमें कही है मालूम होगी।

देखो अपने पूज्य वा पूर्व ऋषियोंने क्या क्या वाक्य कहे हैं, अहिन्सा सत्य, अदत्ता दानानि वर्जन, ब्रह्मचर्य्य, निर्लोभतादि ही शिव मार्गकी साधना कही है। देखो विजय देव सूरीने क्या आत्महितो-पदेश कहा है।

चेतोरे चेतो प्राणियां, मति राचोरे रमणीरे संगके सेवोरे जिनवाणी ॥ ए आंकड़ी ॥

सुरतरुनीपरें दोहिलोरे, लाधो नर अवतार। अहलो जनम किम हारिये, कांई कीज्योरे मनमांहि विचार के ॥ चेतो रे० ॥ १ ॥ पहली तो समकित सेविये रे, जेछे धरमनो मूल। संजम समकित बाहिरो, जिन भाख्यो रे तुस खंडवा तुल्य के ॥ चेतो रे० ॥ २ ॥ अरिहन्त देव आराधज्यो रे, गुरु गिरवा शुद्ध साध। धर्म जिनेश्वर भाषियो, ए समकितरे सुरतरु समलाध के ॥ चेतोरे० ॥ ३ ॥ तहत करीने शरधज्योरे, जे भाख्यो जगनाथ। पांचोही आस्रव परिहरो, जिममिलियेरे शिव पुरनो साथके ॥ चेतोरे० ॥ ४ ॥ जीव वंछे सर्व जीवणोंरे, मरण न वंछे कोय। आपसमूं कर लेखवो, त्रस थावररे हणज्यो

मत कोयकी ॥ चेतोरे० ॥ ५ ॥ अपजश अकीर्ति बुधा भवेरे, पर भव दुःख अनेक। कूड़ कहतां पामिये, कांई आणोरे, मन माहि विवेक की ॥ चेतोरे० ॥ ६ ॥ चोरीलेवे कोई पर तिणोरे तिणथी लागेछे पाप। तो धन कंचन किम चोरिये तेहथी बाधेरे भव भवमें संताप की चेतोरे० ॥ ७ ॥ महिला संगे टूहव्यारे, नव लख सन्नी उपजन्त अणेक सुखरे कारणे किम कीजेरे हिंसा मतिवन्त की ॥ चेतोरे० ॥ ८ ॥ पुत्र कलत्र घर हाटनीरे, ममता मत कीजो फोक जेह परिग्रह मांहि छै, ते तो छाड़ीरे गया बहुला लोक की ॥ चेतोरे० ॥ ९ ॥ अल्प दिवसनों पाहुणोंरे, सहुको दूख संसार। एक दिन ऊठी जावणों, कुणजाणेरे किणही अवतार की ॥ चेतोरे० ॥ १० ॥ व्याधि जरा ज्यां लग नही रे, तहां लग धर्म संभाल। धारा सजल घन वरसतां, कुण समरथरे बांधेवा पालकी चेतोरे० ॥ ११ ॥ अंजलीनां जल नी परें रे, अण अण छीजे छे आव। जावेते नहिं वाहुडे, जरा वालेरे जोबन में घाव की ॥ चेतोरे० ॥ १२ ॥ मात पिता बन्धव बहुरे, पुत्र कलत्र परिवार। स्वारथ लग सहुको सगा, कोई पर भवरे, नहिं राखण हारकी ॥ चेतोरे० ॥ १३ ॥ क्रोधमान माया तजोरे,

लोभ न करजो लिगार। समता रस भूरी रहा, वली दोहिलोरे मानव भवतारकी ॥ चेतोरे० ॥ १४ ॥ आरम्भ छोड़ी आतमारे, पीवो संजम रस पूर। शिव रमणी वेगावरो, इस भाखेर विजय देव सूरकी ॥ चेतोरे० ॥ १५ ॥ इति ॥

प्रियवरों इस ढालका अर्थ समझो, न्याय दृष्टि से देखो, विशुद्ध बुद्धिसे विचारो, विजय देव सूरीने क्या कहा है, पंचास्रव द्वार सेने सेवाने में एकान्त पाप कहा है, किंचित् भी आस्रव द्वार सेने सेवाने में धर्मका लेश नहीं हैं, सम्यक्त्वका सेवनाही मुख्य कहा है, शुद्धदेव गुरु धर्मकी साधना ही सम्यक्त्व और शिव मार्ग है।

कई लोग कहते हैं जिस प्रतिमा की पूजा जल, चन्दन, पुष्पादि अष्ट द्रव्योंसे करना यह श्रावक धर्म है, द्रोपद राजाकी पुत्री द्रौपदीने पूजा करी है, तथा देवलोकोंमें देवता पूजन करते है, जिसका उत्तर यह है, देवता श्रावक नहीं है देवता तो मिथ्यात्वी व सम्यक्त्वी दोनूही प्रकार के हैं, मिथ्यात्वी है उनमें पहला गुणस्थान है सम्यक्त्वी है, उनमें चतुर्थ गुणस्थान है, लेकिन पञ्चम गुणस्थान जो श्रावक पद

है वह किसी भी देवतामें नहीं है, तो प्रतिमा पूजना श्रावक धर्म कहां रहा 'ग्रामोनास्तितर्हिंसीमां विवादः क्वः ग्राम गांव, नहीं है वहां सीमाकी लड़ाई क्यों ग्राम बिना सीमा नहीं होती, तथा द्रौपदीने प्रतिमा की पूजन करी उस वक्त उसमें सम्यक्त्व थी ऐसा सूत्रमें भी नहीं कहा है और उस वक्त सम्यक्त्वका होना भी संभव नही है क्योंकि द्रौपदीने पूर्व भवमें पांच भरतार वरने का नियाणा किया था ऐसा तीव्र रसका निधान पूर्ण हुए बिना सम्यक्त्व कैसे फरस सकती है, तथा आचार्य गन्धहस्ती ने उघनिर्युक्ति कामें द्रौपदीके एक पुत्र होनेके बाद सम्यक्त्वकी स्पर्शना कही है और स्वयंवरा मण्डपमे आते वक्त द्रौपदीने पूजन करी ऐसा अधिकार श्रीज्ञाता सूत्रमें कहा है तो उस वक्त द्रौपदीके काम भोगकी तीव्राभिलाषा स्पष्ट दीखती है, इसलिये उस वक्त समकित का होना असंभव है। आनन्दादि दश श्रावकोंका वर्णन श्रीवीर प्रभुने उपासक दसा सूत्रमें कहा है, तहां कहीं भी प्रतिमा पूजनेका अधिकार कहा नहीं, श्रावक धर्म द्वादश व्रत रूप है उनका वर्णन विस्तार पूर्वक कहा है, ज्यो व्रत है वो श्रावक धर्म है अव्रत है वह अधर्म है, देवलोकोमें जो

देवता जिन प्रतिमा पूजते हैं। वो उपजते ही राज्याभिषेक समय शस्त्र प्रतिमा पूतली आदि ३२ बत्तीस प्रकार की बातें को पूजन करते हैं उनकी मर्यादा वही है हितकारी सुखकारी विघ्न निवर्तक और फल सहित उनकी इस भवमें पुन्यानुसार पूर्व पश्चात् है, संसारी मंगल है, अगर धार्मिक कार्य हो तो केवल समदृष्टि ही को पूजना चाहिये मिथ्यात्वी तो धर्म अधर्म समझते नहीं लेकिन देवलोक की मर्यादा राज बैठने की वक्त जो है सो सब उनकों करनी पड़ती ही है मिथ्यात्वी हो वा सम्यक्त्वी हो, भव्य हो या अभव्य हो सब ही करते हैं पर द्रव्य पूजा करने में जिनाज्ञा कैसे हो सकती है, जो जिनाज्ञा बहिष्कृत है वो सावद्य है, और सावद्य कार्य से एकान्त पाप कर्म का ही बन्ध है, श्रावक की सामायक पोषह मे सावद्य जोगका त्याग है इसलिये द्रव्य पूजा नही करता, भाव पूजा जो वन्दना जयणा युक्त गुणगाना नमस्कार करना सिद्धान्त सुनना स्वाध्यायादि करना इत्यादि निरवद्य कार्यकी जिनाज्ञा है वे सब कार्य सामायक पोषह मे करता कराता और अनुमोदता है और वैसे ही कार्य से अशुभ कर्म निर्जरता है, तथा सूरियाभदेव जब प्रथम देव

लोकसे अपने परिवार सहित भगवत् श्रीमहावीरस्वामी के पास आया तब भगवन्तसे पूछा मैं आपको वंदना करूं तब प्रभुने कहा यह तुम्हारा पुराना आचार है १ जीत आचार है २ यह तुम्हारा कार्य्य है ३ यह तुम्हे करने योग्य है ५ मेरी आज्ञा है ६ ऐसा कहा और नाटक करने के लिये पूछा तो आदर नहीं दिया मौन रक्खी और मनमें भला नहीं जाना ऐसा खुलासा पाठ श्रीरायप्रसेणी सूत्र में है, तो न्याय बादी और निरपक्षीको विचारना चाहिये कि साक्षात् त्रैलोक्य नाथ भगवन्त श्रीमहावीरस्वामीने अपने मुख आगे ही नाटक करने की आज्ञा नहीं दी और भला भी नहीं जाना तो स्थापना निक्षेपा के आगे नाचना कूदना ताल मंजीरे आदि बजाना तथा एकेन्द्री जीवोंको विनाश करने की आज्ञा कैसे हो सकती है, जब श्रीबीर प्रभुने जिस कार्य्यको अच्छा ही नहीं जाना तो उनके साधू साध्वी श्रावक श्राविका अच्छा कैसे जान सकते हैं सम्यग्दृष्टि जीव जबतक सर्व्वब्रती नहीं हुआ है जब तक संसार मे अनेक कर्तव्य करता है परन्तु धर्म तो वैसे ही कार्य्य में समझेगा जिस कार्य्य में जिनाज्ञा है, जिनाज्ञा बाहर के कार्य्य में सम्यग्दृष्टि तो कदापि धर्म नहीं

समझ सकता। देखो पार्श्वचन्द्र सूरीने क्या कहा है—

ढाल पार्श्वचन्द्र सूरी कृत।

दुलहो नर भव पामणों जीवनें, दुलहो श्रावक कुल अवतारो, गुणवन्त गुरूनों संग छै दोहिलो ते पामीने मत हारो रे प्राणी जीवदया व्रत पालो ॥ १ ॥ आस्रव प्रति पक्ष संवर बोल्यो, तेहनो रहस्य विचारो, आरम्भ आस्रव संजम सम्वर, इमजाणी जीव म मारोरे ॥ प्राणी जी० ॥ २ ॥ जीव सहू ते जीवणूं वन्छै, मरणु न वन्छै कोई आपण दुःख छै जिम छै परने, हिये विमासी जोईरे ॥ प्राणी जी० ॥ ३ ॥ अङ्ग उपाङ्ग शस्त्र धारा अणीसूं, नख चख छेदे कोई, जेहवी वेदना मनुष्यने होवै तेहवी एकेन्द्रीने होईरे ॥ प्राणी जी० ॥ ४ ॥ जो जरा पुरुषनें बलवन्ततरुणो, देवै मुष्टि प्रहारो। जे दुःख वेदै तेहवो एकेन्द्रिने, लीधां हाथ मझारोरे ॥ प्राणी जी० ॥ ५ ॥ समकित बिन गज भव सुमलारी, दया चोखे चित पाली ; प्रति संसार कियो तिण ठामें, मेघ कुँवर हुओ दुखटालीरे ॥ प्राणी जी० ॥ ६ ॥ अभय दान दाना मांहि मोटो, बलेदान सुपात्रें दाख्यो। आगम

सांभलने जिनमत जोवो, सूनदया धर्म भाख्योरे ॥ प्राणी जी० ॥ ७ ॥ लोह शिला ज्यो तिरै महोदधि, कदा पश्चिम ऊगे भानू ॥ सहज अग्नि पण शीतल होवै, तोहो हिंसामें धर्मम जाणूरे ॥ प्राणी जी० ॥८॥ रवि आंथमियां दिवस विमासे, अहिमुख अमृत जोवे ॥ विषखायां बले जीवणूं वाञ्छे तो हिन्सामें धर्म होवैरे ॥ प्राणी जी ॥ ६ ॥ अग्नि सीचीनें कमल बधारै, चोर धोवा नें काटो आणें ॥ ज्यों कुगुरु प्रसंगे मूरख मानव, जीवहणे धर्म जाणें ॥ प्राणी जी० ॥ १० ॥ आगम वेद पुराण कुरान में कह्यो दया धर्म सारो ॥ वलि जिनजीरा वचन सांचा जाणूं तो, छक्काय जीवांनें मत मारोरे ॥ प्राणी जी० ॥ ११ ॥ अर्थ अनर्थ धर्म जाणीनें, जीवहणे मन्द बुद्धि ॥ पिण धर्म काजे छक्कायहणें त्यारी, सरधा घणीके औंधीरे ॥ प्राणी जी० ॥ १२ ॥ सूईरेनांकि सीधड़ोपोवे, ते किम आंधो पैसे ॥ हिंसा मांहि धर्म प्ररूपे, ते सालो साल न वैसैरे ॥ प्राणी जी० ॥ १३ ॥ पिता बिना पुत्र उत्पनो, मा बिन बेटो जायो ॥ यों हिंसामे धर्म प्ररूपे, यो मुनै अचरिज आयोरे ॥ प्राणी जी० ॥१४॥ पार्श्वचन्द्र सूरी-भणे इण परें आणासहित करुणां पाले ते नर दुर्गति ना दुःखटाले ज्ञान कला उजवालेरे प्राणी जी० ॥१५॥ इति

अथ ढाल दूजी चाल तेहीज ।

चैत्य मन्दिर मांहि वृक्ष ज जायो, अनन्त जीवानूं वासो ॥ लोह कुहाड़ी ले आपण छेदे, कांई करो दुर्गति वासोरे मुनिवर हिंसा धर्म कांई भाखो ॥ १ ॥ सांच कहै तो ते नहिं मानै, कूड़ कहै ते कीजे ॥ असत्य भाषीनें होणाचारी, ते गुरु कर आघालीजेरे ॥ मुनि ॥ २ ॥ चारित्र पाली मुक्ति पहुंता, ते मारग नहिं थापो । मूढ़ मती होई जीव विराधो, न्याय- करो एहवो पापोरे ॥ मुनि० ॥ ३ ॥ धर्म उथापो नें हिंसा थापो, छक्काय रा प्राण लुटावो । धर्म तणूं छांटो नहिं मांहि, अहलो जन्म गुमावोरे ॥ मुनि० ॥ ४ ॥ बनमे बावरी बाबर मांडे, लोकामे हुवै पुकारो । भगवन्त आगलि बावर मांड्यो लाखां कोड़ांगो संहारोरे ॥ मुनि० ॥ ५ ॥ उणानें चाम चाहिजे नें मांस खाईजे पेटरे कारण खावै । वै जीव वीराधिनें मन पछतावै दुणाने न्याव न आवैरे ॥ मुनि० ॥ ६ ॥ थे चाम न भीटो मांस न खावो कांई तुम जीव हणावो । थे भगवन्त माथै दूषण दोछो न्याय तुमे दुर्गति जावोरे ॥ मुनि० ॥ ७ ॥ खाजा लाडू सेव सुहाली भर भर थाल्यां लावो वै त्यागी थे भोग लगावो कांई तुमें दुर्गति जावोरे ॥ मुनि०

॥ ८ ॥ कई श्रावक राते अन्न न खावै तुमे देवने कांई चढ़ावो। मारग छोड़ कुमारग चाल्या एकरणीसें दुःखपावोरे ॥ मुनि० ॥ ९ ॥ भगवन्त बचन नीं प्रतीति नहीं छै तिणथी फैन करावो। देव लोक थी तो उरें जाणीजे निश्चै निगोदमें जावोरे ॥ मुनि० ॥ १० ॥ देवरे कारण छकाय हणावो; गुरुरे कारण खावो। धर्मरै कारण हँस हँस लावो थे किणरे नांव छुड़ावोरे ॥ मुनि ॥ ११ ॥ प्रीति पुराणीं थासूँ पहली छूंती तिणसूं थाने चितराऊं। मैं म्हारो मन निर्मल कीधो जिनम ारग गुण गाऊंरे ॥ मुनि० ॥ १२ ॥ भावकरीनें भगवन्त पूजो द्रव्यै दूर करावो। सुखे समाधे मोक्ष पधारो बहुला सुख जिम पावोरे ॥, मुनि० ॥ १३ ॥ साधू तो छक्कायनां पियर थे कहि कहि कांई हणावो। अरज हमारी सांची मानूं फेर चौरासी में नहि आवोरे ॥ मुनि० ॥ १४ ॥ पार्श्वचंद्र कहै चारित्र लेई आरम्भ थी मनटालो। वीर वचन थे सांचा परूपो सूधो संजम पालोरे ॥ मुनिवर हिंसा धरम काई भाखो ॥ १५ ॥ इति।

अब विवेकी जीवों को पक्ष पात रहित होकर विचारना चाहिये कि केवल स्वामी भीखनजीने ही

द्रव्य पूजाको सावद्य नहीं कहा है स्वामी भीखनजीके हुए पहले जो आचार्य और जती हुये उनमें से बहुत लोंने कहा है, देखो महानिशीथ सूत्रके पंचम अध्ययन में कमल प्रभाचार्यने कहा है जिनालय सर्व सावद्य है मुझे आचरणे योग्य और प्ररूपणा योग्य नहीं है तथा श्रीभगवन्त महावीर स्वामी निर्वाण हुए ९८० वर्ष पीछे श्रीदेवर्द्धिगणी सूत्र लिखे उनके ५५ वर्ष पीछे हरिभद्र सूरी स्वर्ग हुए जिन्होंने महानिशीथ सूत्रका उद्धार किया और चैत्यवास खण्डन किया अभय देव सूरीके गुरु जिनेश्वर सूरी तथा बुद्धिसागर सूरी सं० १०८४ में दुर्लभ देवकी सभामें चैत्य-वासियोंसे विवाद कर जय प्राप्त हुये उनके प्रशिष्य जिनवल्लभ सूरीने जिनागमका पक्ष ले ४० काव्यका संघपट्ट ग्रन्थ बनाया उन्होंने चैत्यवासियोंका तथा शिथिलाचारियोंका भेषधारियोंका कैसा खण्डन किया है वो संघपट्ट ग्रन्थ वाचनेसे स्पष्ट मालूम हो सक्ता है जिन प्रतिमा यात्राके लिये संघपट्ट को २१ वीं गाथामें कहा है कि—

काव्य २१ वां संघपट्टक ग्रन्थका ।

आकृष्टं मुग्ध मीनान् बड़िश पिशितव द्विंबमादर्श्य जनं । तन्नाम्नारम्यरूपानपवरकमठान् स्वेष्ट सिद्धै

विधाय ॥ यात्रास्नात्राद्युपायैर्नमसितक निशाजागराद्यै श्छलैश्च । श्रद्धालुर्नाम जैनै श्छलितइव शठै र्वंच्यते हा जनोऽयम् ॥ २१ ॥

भावार्थ ।

अर्थात् जैसे मच्छीगर मच्छी पकड़ते समय लोहेके कांटे पर मांस लगाके मच्छियों को ललचाके जालमें पकड़ते हैं वेसे ही द्रव्य लिंगी भेषधारी स्व स्वार्थके लिये मूर्ख लोगों को जिन विम्ब दिखाके और यात्रा स्नात्रका महाफल वताके श्रद्धालु जैनियों को छल र हेहैं याने मोक्षमार्ग से विमुख कर भवसागर में डवोते हैं ।

जिन वल्लभ सूरी नें मूलकाव्य में ऐसा कहा है उनके पाट श्रीजिनदत्तशूरि दादाजी हुए उन्होंने भी सिथिलाचारी द्रव्य लिङ्गी तथा चेत्य वासियोंका खण्डन किया है उनके पाट जिन पतिशूरि हुए उन्होंने संघपटक ग्रंथ ४४ काव्योंकी टीका करीव तीन हजार श्लोक प्रमाण करी ये सव अधिकार पुस्तक संघ पट्टक छपी हुई के प्रस्तावना में कहा है. तथा अर्थ करने वालोंने अपनी श्रद्धानुसार कई जगहें विपरीत अर्थ किया है परन्तु मूल काव्य २१ वांमे तो जिन वल्लभ शूरीने जो कहा वो ऊपर लिखा ही है, तथा द्वादसांग रूप श्रीजिनवचन गणधर रचित हैं उन्होंमें जगहे जगहें पञ्चमहाव्रतमयी या द्वादसव्रतमयी धर्म कहा है जीव हिंसाका फल महा दुःख दायी ही कहा है प्रथम अङ्ग श्रीआचारङ्ग सूत्रमें देवल या प्रतिमा के लिये पृथ्वी काय हणे उसे मन्द बुद्धी कहा है परन्तु कई आचार्योंने ग्रन्थोंमें मूल सूत्रोसे विपरीतार्थ कर अशुद्ध प्ररूपणा करी तथा सिथिला चारी कर रहे हैं कहते हैं साधूको तो कल्पता नहीं लेकिन श्रावक का धर्म है, जल चन्दन अक्षत पुष्प धूप दीप फल नैवेद्य आदि द्रव्योंसे जिन प्रतिमाको पूजना द्रव्य खर्चकर मन्दिर बनवाना सारङ्ग तबले आदि वजित्रों द्वारा गाना, नृत्य करना, तीर्थं करोकी भक्ती हैं इससे महा

पुन्योपार्जन होता है और मुक्ति मार्ग है, ऐसो प्ररूपना करते हैं परन्तु बुद्धिमान मोक्षाभिलाषियों को निरपक्ष होके विचारना चाहिये तीर्थंकर देव निरारम्भी थे या आरम्भी थे ? सर्वज्ञ पुरुष सावद्य के त्यागी थे या भोगी ? सचित द्रव्यका संघट्टा करते थे या नही, अचित वस्तु भी उनके लिये कोई गृहस्थ किसी वक्त करता तो उसे लेते थे या नहीं ऐसा विचारना तो वाजिब है, यदि वो श्रीवीतराग प्रभु सचित वस्तुका संघट्टा नही करते कराते थे तथा करने में महा दोष समझते थे और अपने शिष्य साधू साध्वियोंको निर्दोष आचार पलाते थे ऐसा ही प्ररूपते थे तो फिर उन्ही पुरुषोंकी ध्यानारूढ़ प्रतिमा बनाके उसे जिन समान समझके जिस जिस वस्तुओं के वो त्यागी थे उन्ही वस्तुओंका स्पर्श कराना और भक्ति समझ उनके आगे चढ़ाना ज्ञान है या अज्ञान ? तथा हिंसा करके धर्म समझना समकित है या मिथ्यात्व ? सावद्य जोग हैं या निरवद्य जोग ? अगर द्रव्यपूजा करना निरवद्य जोग हैं तो साधू मुनिराज क्यों नही करते तथा श्रावक सामायक पोषहमें क्यों नही करते ? लेकिन करें कैसे सावद्य जोग है जिनाज्ञा बाहर हैं, जब करना नहीं तो कराना और करते हुएको अनुमोदने में धर्म कैसे हो सक्ता है जिनवल्लभ शूरिने मूल काव्यमें कहा सो ऊपर कहा ही है, पार्श्वचन्द्र शूरिकृत ढालमें और कमल प्रभाचार्यने महानिशीथ सूत्रमें क्या कहा है अथवा लूंकाजी आदि अनेकोंने द्रव्य पूजामें धर्म नही कहा है, तब कोई ऐसा कहै कि तुम जिस आचार्य और जातियों को मानते ही नही हो तो फिर उनका कथन की साक्षी क्यों देते हो जिसका उत्तर यह है कि जो वचन एकादश अङ्गसे मिलते हुए हैं वोह सब हमको मानने योग्य है और मानते हैं केवल हमें ही क्या सब सम्यग्दृष्टि ही एकादश अङ्गके अनुकूल वचन ज्यो हैं उन्हे सत्य मानते हैं और जो एकादश अङ्गसे प्रतिकूल वचन है वोह असत्य मानते हैं किन्तु सत्य को सत्य समझने से वक्ताकी सर्व वक्तृता सत्य मानना ऐसा कदापि सिद्ध नहीं हो

सक्ता, देखो श्रीभगवती सूत्रमें कहा है सोमल ब्राह्मण भगवत श्रीमहावीर स्वामी को पूछा सरसव भक्ष है या अभक्ष, तब भगवन्तने उस ही के शास्त्रका प्रमाण देके फरमाया है कि सोमल तुम्हारा ब्राह्मण संबन्धी शास्त्र में सरसवके दो भेद कहे हैं मित्रसरसव १ धान्य सरसव २ इत्यादि विस्तार पूर्वक अधिकार है, तो भगवतने ही अन्य मतीके शास्त्रकी साक्षी देके समझाया तो उनके साधू साध्वी श्रावक श्राविका अगर किसी वक्त अन्य शास्त्रकी या आचार्जोंके बनाये हुए ग्रन्थोंको साक्षा देके युक्ति पूर्वक दृष्टान्तों उदाहरण देके उसको दृढ़ प्रत्यक्ष करा देवें तो क्या दोषकी बात है ज्यो सत्य बात है वोह तो सत्य ही रहेगी जी चाहे सो कहो मिथ्यात्वी या सम्यक्त्वी लेकिन सत्य वार्ताको सत्य ही समझी जायगी न्यायवादी उसे शास्त्रानुकूल ही कहेंगे, जिनोक्त शास्त्रोंमें भी जगह जगह अहिंसा धर्म ही कहा है, धर्म हेतु जीवहण्यां दोष नहीं यह वचन तो अनार्य लोगोंका है आचारङ्ग सूत्रमें खुलासा पाठ है, तथा देवल प्रतिमाके लिये पृथ्वी आदि हणे उसे मन्द बुद्धि श्रीदशमां अंगमें कहा है मगर प्रतिमापूजते जीवों की हिंसा का दोष नहीं ऐसा वाक्य गणधर कृत शास्त्रों में कहीं भी नहीं है, इसीलिये जैन धर्मानुरागियोंसे नम्रताके साथ ऊपर कही और कह रहे हैं हे देवानुप्रिया निरपक्षी होके विचारो श्रीजिन आज्ञा वाहरका कर्त्तव्य एकान्त सावद्य ही है उसमें जिन प्रणीत धर्मका लेश न समझो, प्रथमागमें भगवतने यही कहा है मेरी आज्ञा में मेरा धर्म है इसीलिये कहना है धर्माधर्म को यथार्थ समझकर जिन वचनोंकी आस्था प्रतीत रखना उसी का नाम दृढ़ समकित है, समकित धारी जबतक सर्व व्रती नहीं हुआ है तबतक खाना पीना पहरना ओढ़ना स्नान करना कामभोगसेना द्रव्य संग्रह करना मट्टी गोवर दधि दोब अक्षत तथा कुलदेवी देवताओंको पूजना संसारिक मंगल करना विवाह समय या अन्य समय जिन प्रतिमा को पूजना आदि स्व पर अर्थ अनेक जिन आज्ञा

बाहर का कर्त्तव्य करता कराता है लेकिन जिनाज्ञा बहिष्कृत कर्त्तव्य में धर्म कदापि नहीं समझता, क्षायक या क्षयोपशम समकित धारी तो अनेक सावद्य कार्य करता कराता है व्योपार वाणिज्य संग्राम दगाठगा पुत्र पौत्रादि का विवाह और कुलकम करता है परन्तु जिन आज्ञा बाहर का कार्य में धर्म नहीं, वैसे ही देवलोक में देवता जिन प्रतिमादि ३२ प्रकार के थाने पूजते हैं वो उनकी स्वर्ग स्थिती है सब ही को करना होता है अहस्थ लाय से द्रव्य निकालके ल्यावे उसको पूर्व पच्छा थान पूवे पश्चात् हितकारी, सुखकारी, मोक्षदायी और फलदायक शास्त्रों में कहा है, वैसाही प्रतिमा पूजने से जानना चाहिये, क्योंकि दोनू जगह एकसा पाठ है परन्तु जिसके मोहकर्मका प्रबलोदय है उनको शास्त्र शस्त्रवत् परणमें है वो विपरीत अर्थ करके हिंसामें या जिनाज्ञा बाहर धर्म प्ररूपते हैं, और जिन वन्दन समय या चारित्र लेने से पेचा पच्छा है तो समझना चाहिये ए पर भवके लिये हैं; न्यायाश्रयी और जिन आज्ञा में धर्म समझने वाले जिनधर्मी तो जिनाज्ञा बाहर धर्म कदापि नहीं समझ सकते, उनको तो जिन वचन ही अर्थ और परम अर्थ है उनकी जिन प्ररूपित धर्म ही से हाड़ की मींगी रङ्गरत्ता है ऐसे दृढ़ समकित धारी जीव बहुत थोडे हत्ते हैं सोही स्वामी भीखनजीने ढालमें कहा है।

॥ ढाल स्वामी भीखनजी कृत ॥

दृढ़ समकित धर थोड़ला, समकित बिन शिव-दूर। भवियण। भव्यजीवां तुमे सांभलो, पामे बिरला शूर ॥ भवियण ॥ दृढ़ समकित धर थोड़ला ॥ ए आंकड़ी ॥ १ ॥ समकित समकित कर रह्या, मर्म न जाणे कोय ॥ भ० ॥ जिण घट समकित परगमै, ते घट बिरला होय ॥ भ० दृढ़० ॥ २ ॥ तिण घट

समकित रूपियो, उगयो सूरज सार ॥ भ० ॥ जिण घट हुवो चांदणों, दूरगयो अन्धकार ॥ भ० ॥ दृढ़ समकित धर घोड़ला ॥ ३ ॥

भावार्थ ।

कहते हैं कि दृढ़ समकित धारी जीव थोड़े हैं सम्यक्त्व विनां शिव कहिये मोक्ष वहुत दूर है इसलिये भव्यजनों तुम सुनो सम्यक्त्व कोई विरला शूरवीर ही पाते हैं, जगतमें समकित समकित सवही कह रहे हैं लेकिन मर्म नहीं जानते, जिस पुरुष के हृदय में सम्यक्त्व परगमी और जिसके हृदय में सम्यक्त्व परितः सर्वतः रमरह्या है ऐसे कोई विरले हलुकर्मी है, जिनके हृदयमें सम्यक्त्व रूप सूर्योदय हुआ है उनके मिथ्यात्व मयी अन्धकार दूर होके अलौकिक प्रकाश हो रहा है लेकिन ऐसे वहुत थोड़े हैं उदाहरण देके कहते हैं जैसे सुनो—

॥ ढाल ॥

सरसर कमल न नीपजै, बन वन अगर न होय ॥ भ० ॥ घर घर सम्पति न पामीये, जन जन पण्डित न होय ॥ भ० ॥ दृढ़ ॥ ४ ॥ गिरिवर गिरिवर गज नहीं, पोल २ नहीं प्रासाद ॥ भ० ॥ कुसुम कुसुम परिमल नहीं, फल फल मधुर न स्वाद ॥ भ० दृढ़ ॥ ५ ॥ सवहि खान हीरा नहीं चन्दन नहीं सब बाग ॥ भ० ॥ रत्न रासि जिहां तिहां नहीं, मणिधर नहीं सब नाग ॥ भ० ॥ ६ ॥ सबहि पुरुष शूरा नहीं, सगला नहीं ब्रह्म-चार ॥ भ० ॥ नारी नहीं सर्व सु-लक्षणी, बिरला गुण भण्डार

॥ भ० दृढ़० ॥ ७ ॥ सगला गिर सुवरण में नहीं, नहिं कस्तूरी ठामों ठाम ॥ भ० ॥ सबही सीप मोती नहीं, केशर नहीं गामो गाम ॥ भ० दृढ़० ॥ ८ ॥ सबने लब्धि न ऊपजे, सघला मुक्ति न जाय॥ भ० ॥ सघला सिंह न केशरी, साधु किहां २ जमात ॥भ० दृढ़० ॥ ६ ॥ तीर्थंकर चक्रवर्त्तनी, पदवी बड़ी पिछाण ॥ भ० ॥ सघला जीव पामें नहीं, तिम पण समकित जाण ॥ भ० ॥ दृढ़ समकित घर थोड़ला ॥ १० ॥

भावार्थ।

सरोवर द्रह तलावादि सब ही में कमल सहश्रदल तथा सामान्य कमल नहीं होते ॥ १ ॥ सब वनोपवन बगीचोंमें अगर वृक्ष कृष्णागरादि महा सुगन्धी वृक्ष नहीं होते ॥ २ ॥ सब ही गृहस्थों के घरमें सम्पत्ति कहिये ऋद्धि नहीं होती ॥ ३ ॥ सब ही मनुष्य पण्डित याने सत्यासत्य जानने वाले नहीं होते ॥ ४ ॥ सब ही पर्वतों में हाथी नहीं होते ॥ ५ ॥ दरवाजे २ ऊपर महलायत नहीं होती ॥ ६ ॥ सर्व जातिके पुष्प सुगन्धित नहीं होते ॥ ८ ॥ सम्पूर्ण जातिके फल मधुर नहीं होते ॥ ६ ॥ सबही खानोंमें हीरकादि बहु मूल्य उत्तम रत्न नहीं होते ॥ १० ॥ सब वनोंपवनमें चन्दनका वृक्ष नहीं मिलता ॥ ११ ॥ बहुमूल्य रत्नोंकी राशि सर्वत्र नहीं होती ॥ १२ ॥ सर्व सर्प मणिधर नहीं होय ॥ १३ ॥ सब ही पुरुष शूरवीर याने सर्व कुशल नहीं हो सकते ॥ १४ ॥ सब स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य धारी नहीं होते ॥ १५ ॥ सर्व स्त्रियां सुलक्षणी नहीं होती ॥ १६ ॥ सब ही गुणवान नहीं होते गुणी बिरले ही होते हैं ॥ १७ ॥ सर्व पर्वत सुवर्णमय नहीं ॥ १८ ॥ जगह जगह कस्तूरी नहीं होती

॥ १६ ॥ सब ही सीपोंमें मोती नहीं ॥ २० ॥ ग्राम ग्राममें केशर नहीं ॥ २१ ॥ सब ही तपस्वी लब्धि धारक नहीं होते ॥ २२ ॥ सब प्राणी मोक्ष नहीं जाते ॥ २३ ॥ केशरी सिंह सब ही नही होते ॥ २४ ॥ मण्डल और जमातों में सब साधू नहीं होसकते ॥ २५ ॥ तीर्थङ्कर चक्रवर्त्त की पदवी सब जीव नही पासकते ॥ २६ ॥

ऐसे ही सब जीवोंको सम्यक्त्व मयी महा अमोल्य रत्नकी प्राप्ति नहीं हो सकती सम्यक्त्व का पाणा तो महा मुश्किल है।

॥ ढाल ॥

नवोंही पदारथ मांहिलो ऊंधो, सरधे ज्यो एक ॥ भ० ॥ तोहि मिथ्यात्वी मूल गो, भूला भरम अनेक ॥ भ० दृढ़ ॥ ११ ॥

भावार्थ।

जीव चेतनां लक्षण १, अजीव अचेतनां लक्षण २, पुन्य शुभ कर्म ३, पाप अशुभ कर्म ४, आस्त्रव पुण्य पापका कर्त्ता ५, सम्वर अशुभ कर्मोंका रोकता ६, निर्जरा अशुभ कर्म को विखेर कर आत्म प्रदेशों को उज्वल करना ७, बन्ध शुभ अशुभ कर्मका बन्ध ८, मोक्ष शुभाशुभ कर्मोंसे सर्वतः छुटकारा ९, इन नव पदार्थों में ८ को यथार्थ सरधै और १ एक पदार्थको शङ्का सहित सरधै तो भी मिथ्यात्व ही है, अनेक जीव भ्रमसे भूल रहे हैं, मिथ्यात्वी १० पूर्व से किञ्चित् कम तक पढ़ जाते हैं, लेकिन सम्यक्त्व नही स्पर्शते मिथ्यात्वी ही हैं।

॥ ढाल ॥

दशों ही मिथ्यात्व माहिलो, बाकी रहै कदा एक ॥ भ० ॥ तोही गुणठाणों पहलो कह्यो, समझो आण विवेक ॥ भ० दृढ़ ॥ १२ ॥

भावार्थ ।

जीवको अजीव सरधै तो मिथ्यात्व १, अजीवको जीव सरधै तो मिथ्यात्व २, धर्म को अधर्म सरधै तो मिथ्यात्व ३, अधर्म को धर्म सरधै तो मिथ्यात्व ४, साधूको असाधू सरधै तो मिथ्यात्व ५, असाधू को साधू सरधै तो मिथ्यात्व ६, मार्ग को कुमार्ग सरधे तो मिथ्यात्व ७, कुमार्गको को मार्ग सरधै तो मिथ्यात्व ८, मुक्ति को अमुक्ति समझे तो मिथ्यात्व ६, अमुक्ति को मुक्ति सरधे तो मिथ्यात्व १०, यह दश प्रकार के मिथ्यात्व श्रीठाणाङ्ग सूत्रके दशमें ठाणेमें कह हैं, उनमें से नव बोलों को सत्य और एक को असत्य सरधै तो भी प्रथम गुणस्थानो ही है इसलिये हे भव्यजनो विवेक को हृदय में ल्याके समझो ।

॥ ढाल ॥

नवतत्व ओलख्यां विनां, पहरै साधुरो भेष ॥भ०॥ समझ पड़े नहिं तेहनें, भारी हुवै विशेष ॥ भ० हट॰ ॥ १३ ॥ लोधी टेक छोड़े नहीं, कूड़ो करै पखपात ॥ भ० ॥ कुगुरांरा भरमाविया, बहुला बूड़ाजात ॥ भ० हठ० ॥ १४ ॥

भावार्थ ।

नव तत्व को जाने विना कई मनुष्य साधू का वेश पहर कर साधू बनजाते हैं लेकिन उनको साधू के आचार किरा शास्त्र वचनों की समझ नहीं पड़ती सिर्फ भेषधारी द्रव्य साधू हैं रजोहरण चद्दर पात्रादि साधूका भेष अनन्त बार ग्रहण किया और गौतम स्वामी जैसी क्रिया मिथ्यात्व पणेमें करनेसे ग्रैवेक कल्पातीततक अनन्तीवार जीव जा पहुंचा परन्तु कुछ भी मोक्ष फलितार्थ न हुआ ।

मोहवश मिथ्यात्व के रागमें जिस खोटे पक्षको पकड़ लिया फिर उसको न छोडना इस का कारण कुगुरु सेवना ही है जैसे नीति शास्त्रमें भी कहा है यतः ।

मतिर्दोलायते सत्यं सतामपि शतोभिरत्यादिक जो कहा है कि यह १०० सो आदमी जिस बातको कहे उस वक्त सत्पुरुषों की मति याने बुद्धि दोलायमान याने चञ्चल चपल बुद्धि से समुद्र में भ्रमण की तरह भ्रममें पडकर संसार समुद्रमें बहुत डुबती हैं इससे तिरणेका मार्ग केवल शिव मार्ग है सो कहते हैं कि—

॥ ढाल ॥

दान शील तप भावना शिवपुर मारग च्यार ॥ भ० ॥ दान सुपात्र जान्यां बिना नहीं सरै गरज लिगार ॥ भ० दृढ० ॥ १५ ॥

भावार्थ ।

सुपात्र दान १ ब्रह्मचर्य २ उपवासादि तप ३ और निर्मल याने शुद्ध भावना ४ यह चार शिव कहिये मोक्षके मार्ग हैं, इसमें जो पहले सुपात्र दान कहा है, उसको यथार्थ समझे बिना अर्थात् पहले तो सुपात्र का जानना, सुपात्र किसे कहते हैं, कि जो प्राणी मात्र को किसी तरह बाधा न उपजावै, उन हीं सुपात्रों को दान कैसा किस तरह, किस भावसे देना, और देनेसे क्या फल प्राप्ती होती है इत्यादि सब बातोको समझे बिना कुछ भी प्राप्त नहीं होता, इसलिये कहा है—

॥ ढाल ॥

नव तत्व सूधा धारियां, छुटे दर्शों हो मिथ्यात्व ॥ भ० ॥ समकित आवे इणविधे, मानूं सूत्रनी बात ॥ भ० दृढ० ॥ १६ ॥

भावार्थ।

इसलिये कहना है प्रियवरो नवतत्व की शुद्ध याने यथार्थ धारणा होनेसे जो दश प्रकार के मिथ्यात्व हैं उनको त्याग करना, मिथ्यात्व के त्यागेसे ही सम्यग्दर्शनका लाभ होता है ऐसा सूत्रों में कहा है सो वचन मानूं सोही कहा है।

॥ ढाल ॥

देव गुरू मिश्रमानें नही, मिश्र न मानें जिन धर्म ॥ भ० ॥ यां तीनानें जाणौ निर्मला, मिल्यो तिणारो भ्रम ॥ भ० दृढ० ॥ १७ ॥

भावार्थ।

देव १ गरु २ धर्म ३ यह तीनों शुद्ध अर्थात् निर्मल गुण संयुक्त हो, देव श्री अरिहन्त संपूर्ण ज्ञान दर्शन चारित्रादि गुण सहित, गुरू निर्ग्रंथ शुद्ध साधू पंच महाव्रत धारी, धर्म शुद्ध जिनाज्ञामय अहिंसा संजम तपादिक, ये जो तीनों हैं सो सदा सर्वदा निर्मल है, गुण अवगुण सहित मिश्र नहीं है सावद्य निरवद्य मिलके मिश्र नहीं है, कदापि मिश्र नही होसक्ता सो कहा है।

॥ ढाल ॥

समकित आयां नीपजै, साध श्रावक नों धर्म ॥ भ० ॥ शिव रमणी वेगा वरो, टूटै आठोंही कर्म ॥ भ० दृढ० ॥ १८ ॥ समकित विन शुद्ध पालियो, अज्ञान पणों आचार ॥ भ० ॥ नवग्रैवेक ऊंचो गयो नही सरी गरज लिगार ॥ भ० दृढ० ॥ १९ ॥

भावार्थ ।

सम्यक्त्वके पाने से साधू श्रावक का धर्म होता है इसलिये सम्यक्त्व १ चारित्र २ दोनूं धर्म होनेसे मुक्ति मयी जो स्त्री है वो प्राप्त होती है, और अष्ट कर्म क्षय होते हैं सम्यक्त्व विना संजमकी शुद्ध क्रिया पालन कर जीव नवग्रैवेयक स्वर्ग तक गया परन्तु कुछ गरज नहीं सरी, मिथ्यात्वी ही रहा ।

॥ ढाल ॥

पाखंडियारी संगत करै, जिण लोपी जिनवर आण ॥ भ० ॥ समकित जाय शङ्का पड्यां, नन्दन मणियारा जिम जाण ॥ भ० दृढ० ॥ २० ॥

भावार्थ ।

समकित पाके दृढ़ता रखना अति दुर्लभ है वाहर क्रिया पालने वाले वेषधारी द्रव्य लिङ्गी मानूं इस समकित मयी रत्नके लूटेरे हैं, उन पाखंडियों की संगत से सम्यक्त्व रूप अमूल्य ऋद्धिका विनाश होता है पाखण्डियों की संगत करने की आज्ञा नहीं है, जो समदृष्टि पाखंडियों का संग परिचय करता है वह जिनेश्वर की आज्ञा को लोपते हैं उसका परिणाम खराब है जिन वचनो में शङ्का कॅखा उत्पन्न होती है और समकिन पाना दुर्लभ हो जाता है, जैसे नन्दन मणियार पाखंडियो की संगति करके समकित खोयकर तिर्यंच गति पाई उसका अधिकार श्रीज्ञाता सूत्र १३ मा अध्ययनमें विस्तार पूर्वक हैं, इसी अवसर्पणी के चतुर्थ कालमे मगधदेशान्तर्गत राजगृही नाम नगर था। वहा श्रेणिक नाम का महाप्रतापी और न्याय शील नरपति था उस नगर में एक धनाढ्य सेठ नन्दन मणिहार था एकदा उस राजगृही नगरीके निकट ईशान कूणमें गुणशील नामा बाग था वहां भगवन्त श्री महावीर स्वामी पधारे तब नगरीके बहुत लोग वन्दना नमस्कार करने व्याख्यान सुनने गये नन्दन सेठ भी गया

और यथा योग्य जगह देख बैठा भगवन्तकी बानी सुनने लगा भगवन्तने लोकालोकके भाव प्रकाशे संसार को अनित्य और असार कहा साधु श्रावक धर्म बताया तब नन्दन सेठ सुनके अत्यन्त हर्षित हुआ प्रतिबोध पाया और श्रीभगवानसे द्वादश विधि श्रावक धर्म अङ्गीकार किया वन्दना नमस्कार करके अपने घर आया प्रिय धर्मी और दृढ़ धर्मी हुआ सामायक पोषह प्रतिक्रमणादि श्रावक धर्म करता रहा भगवन्त विहार कर जन पद (देशों) में विचरे पीछेमें श्रावक नन्दननें पाखंडी होनाचारियों की संगत से सम्यक्त्व के पर्यवों को हीनकर मिथ्यात्व के पर्यव बढ़ाये जिन वचनों में शङ्का कंखा उत्पन्न हुई एकदा जेष्ठ मासमें तेल उपवास कर पोषधशाला मे पोषध करता था रात्रीके समय धर्म जागरण करते करते अत्यन्त पाणी की पिपासालगी तब विचारने लगा धन्य हे उन पुरुषों को जिन्होंने कुवा बावड़ी तलाव कराये और कराते हैं वोही जीव मनुष्य जन्म सफल कर रहे हैं तो मैं भी प्रात काल सूर्योदय होने से पोषध पार कर राजा श्रेणिक के पास बहुमूल्य भेटणा लेकर जाऊं और राजा की इजातत ले नगर बाहर ईशान कूणमें विवाह गिर पर्वतके पास नन्दापुष्करणी बनाऊं ऐसा विचार कर सूर्योदय होने से पोषह पार बहुमूल्य भेटणा लेकर गया और राजा श्रेणिकसे जमीन की परवानगी ले अपना इच्छा माफिक बड़ाभारी बाग बनाया बागके मध्य भागमें नन्दा पुष्करणी बनाई और उसके चारों तर्फ विशाल मकानात बनाके बहुतलोगोंके आराम केलिये औषधालय १, भोजनालय २ मजनशालालय ३, दान-शाला ४, बनवाके अनेकों को साता उपजाने लगे और अनेक वैद्य पुत्रों को उपस्थित किया लाखों रुपयोंका खर्च लोगोंके आरामकेलिये करता रहा बहुत लोग नन्दन की प्रशंसा करने लगे और कहने लगे मनुष्य जन्म सफल तो नन्दन सेठका है ऐसा सुनके नन्दन भी बहुत राजी होता रहा, एकदा समय नन्दन मणिहार के शरीरमें १६ प्रकारके रोग उत्पन्न हुए. अत्यन्त वेदना से पीड़ित हुआ अनेक वैद्य आये

बहुत औषधियां करी किन्तु रोग न गया मरण समय काल कर अपनी बनाई हुई नन्दा पुष्करणी में मीडकपणे उत्पन्न हुआ मनुष्य जन्म खोके तिर्यंच गति पाई. बगीचे में लोग आवे तब नन्दनकी प्रशंसा करे कहैं मनुष्य जन्म सफल नन्दनने किया है ऐसा लोगोंके मुखसे सुनके मीडक सोचने लगा नन्दन कौन था ये क्या बात है ऐसा विचारने और ईहाया देनेमे मींडक को जाति स्मरण ज्ञान हुआ तब अपना पिछला भव देखा देख कर विचारने लगा अहो इति आश्चर्य कर्मगति विचित्र हैं मैं कौन था और अब कैसा हूं मैं था एक बड़ा-भारी प्रभाविक पुरुष और द्वादश व्रतधारी श्रावक लेकिन पाखण्डियों की संगति में समकित और देशव्रत गमाकर अब मींडक हुआ हूं तो अब द्वादश व्रत अङ्गीकार कर तपस्या करके कर्म काट आत्म कल्याण करूं, ऐसा विचार के व्रत धारण कर तपस्या करने लगा बेले २ पारणां करने लगा अनेक कष्ट सहन कर कालक्षेप करता रहा, एकदा राजगृही नगरीके बाहर गुणशील नामा बागमें श्रमण भगवन्त श्रीमहावीर स्वामी पधारे पर्षदा बन्दने गई उस समय पुष्करणी के नजीक लोगोंसे भगवदागमन की खबर सुनके मीडक अत्यन्त खुश हुआ पुष्करणी से निकल भगवन्त को वन्दनें जाते रास्ते में राजाश्रेणिक के घोड़ेके पैरके नीचे आगया, जब जाने आनेको असमर्थ हुआ तब एकान्त होकर शुभ भावना भाने लगा भगवन्त को नमस्कार कर विचारने लगा हे प्रभो आप सर्वदर्शी हो, मुझे आपका शरण है और मुझे आपकी साक्षीसे यावत् जीवित पर्यंत च्यारों प्रकारके आहार भोगने का त्याग है, ऐसा कहके अपने पाप कर्मोंकी निन्दा करता हुआ च्यारगति चौरासी लक्ष जीवा योनिको खमाता हुआ काल समय मरण पाके प्रथम देवलोक में दर्दुर नामा विमान में ४ पल्यकी स्थिति में उत्पन्न हुआ, देव संबंधी आयुष्य और भवक्षय कर महा विदेह क्षेत्रमें धनाढ्य के घर जन्म ले बाल भाव निवृत कर दीक्षा अवसरसे दीक्षा ले तप कर केवल ज्ञान पाकर सकल कर्मक्षय

कर मुक्ति जावेगा, ये अधिकार विस्तार पूर्वक छट्ठाअङ्ग श्रीज्ञाता सूत्रमें हैं।

अब न्यायाश्रयी और मोक्षाभिलाषी जीवोंको विचार करना चाहिये नन्दन मणिहार की समकित कैसे गई ? सूत्रमें खुलासा पाठ है पाखण्डी हीनाचारियों की संगति से सम्यक्त्व के पर्यायहीन हुए और मिथ्यात्वके पर्याय बढ़े, यदि संसारी जीवोंको साता उपजानें से जिनप्ररूपित धर्म होय तो समकित कैसे जा सकती है और नन्दन तिर्यंचगतिका बन्धन क्यों करता "किन्तु नहीं नहीं कदापि नही" जिन आज्ञा बाहरका कर्तव्य से कदापि धर्म नही होता, आपस में खाना खिलाना साता उपजानादि कार्य संसारी व्यवहार हैं मोक्ष मार्ग नहीं है, श्री सुयगडांग के अध्ययन चौथा उद्देशा में कहा है सातादियां साता होय ऐसी प्ररूपणां वाला आर्य मार्ग से अलग; समाधि से विमुख. जिन धर्मकी निन्दा करण हार, थोड़े सुखके लिए बहुत सुखों का हारने वाला, असत्य पक्षी, अमोक्ष का कारण, और लोह वणिक की तरह बहुत पश्चात्ताप करेगा, तथा कहा है दान की प्रशंसा करना प्राणी जीवों का वध याने प्राण घात को वांछने वाला है और मनां करने से अन्तराय है, इस लिये शुद्ध साधू तो वर्तमान समय होना न कहैं, और जैसा धर्म जिनेश्वर देवोंने कहा हैं उसीका उपदेश और आदेश दे ज्ञान दर्शन चारित्रादि जो मुक्ति मार्ग अध्ययन श्रीउत्तराध्ययन में कहा है वैसा ही कहै तथा जिनाज्ञा बाहर कदापि धर्म नहीं समझे उसही का नाम दृढ़ सम्यक्त्व है।

॥ ढाल ॥

काम देव श्रावक जिसा, श्रावक दृढ़ही बखान ॥भ॥ देव डिगाया नहीं डिग्या, निःशंक रह्या दृढजाण ॥ भ ॥ दृढ ॥ २१ हाडमज्जा रंगी जेहनी, रुचिया प्रवचन सार ॥ भ ॥ अरिहन्त वचन अंगी करै, धन्य

त्यांरो अवतार ॥ भ ॥ दृढ ॥ २२ ॥ ज्ञानदर्शन चारित तप बिना, धर्म न जाणू लिगार ॥ भ ॥ तुम सांभल नर नारियां, मनमे कीज्यो विचार ॥ भ ॥ दृढ ॥ २३ ॥

॥ भावार्थ ॥

कामदेव और अरणिक आदि दश श्रावक भगवन्त श्री महावीर स्वामी के प्रिय धर्मी औ दृढ धर्मी हुए हैं जिनका अधिकार श्री उपासक दशा सूत्र मे है उनको अनेक कष्ट हुए हैं देवताओं ने परीक्षा निमित्त उपसर्ग दे के धर्म छुड़ाने के प्रयत्न किये हैं तथा किसी को स्त्रीने उपसर्ग दिया है परन्तु जो निःस्नेही दृढ धर्मी श्रावक थे वो धर्म से चले नहीं तथा मोह अनुकम्पा नहीं की जिनकी प्रशंसा स्वयं भगवानने की है, और जो बचाने के लिये खडे हुए और देव गुरु समान माता को मारने वाले को पकडने लगे उनका पोषह भंग हुआ ऐसा उपासक दशा में कहा है, इसी लिये कहना है।

हे महानुभावों पक्षपात छोड कर विचारो स्वामी भीखनजी ने कैसा मुक्ति मार्ग कहा है जो जिनेश्वर देव ने कहा वही या और कोई दूसरा? यदि वही कहा है तो हीनाचार्यों के कहने से स्वामी के निन्दक मत बनो, अगर जो अपनी आत्मोन्नति करना चाहते हो तो एक बार स्वामी कृत ग्रन्थ ढाल स्तवन पढ़ो उनका भावार्थ समझो, पंच आस्रव द्वार और अठारह पापस्थानक सेने सेवाने और अनुमोदने में भगवत ने एकान्त पाप ही कहा गया है हिन्सा करनेमे कदापि धर्म नहीं होता, जैसा अपने को कष्ट होय वैसा दूसरे जीवों को भी होता है चलते हिलते ही जीव नही हैं संसार में भगवत ने ६ प्रकारके जीव बताये हैं--पृथ्वी १ पाणी २ अग्नि ३ वायु ४ वनस्पति ५ त्रस ६ जिसमें पृथ्व्यादि पांचो कायों का विनाश कर सिफ त्रस जीवों को साता देने में धर्म कैसे हो सकता है यदि कोई कहै हमारे परिणाम तो साता

देने के हैं वो अच्छे ही हैं तो वह उनकी भूल है अज्ञान है ज्ञानी पुरुष तो छहूं काया को मारने में एकान्त पाप कहा है जीव मारने से पुन्य बंध नही कहा है ऐसा ज्ञान होना चाहिये उक्तं च० "पढमंनाणं तवो दया" याने पहले ज्ञान और पीछे दया कही है, तात्पर्य यह है के पहले जीव अजीव पुन्य पापादि नवों पदार्थों का जानपना चाहिये, जैसा असंख्य प्रदेसी जोव त्रस मे है वैसा हो स्थावर में है जैसे कोई मनुष्य किसी मनुष्य पर तलवार लेकर गला काटते समय विचार करै के मेरा परिणाम तो मारने का नहीं है सिर्फ तलवार की परीक्षा करने का है तो क्या उसको मनुष्य मारने का पाप नहीं लगेगा, वैसे ही कोई कहै हमारे परिणाम तो एकेन्द्री जीवोंको मारने का नहीं है सिर्फ त्रस जिवों को साता देनेका है, तो क्या ज्ञानी पुरुष उसे अच्छा समझ सकते हैं नहीं नहीं कदापि नहीं शास्त्र में तो कहा है "यह नाणीणसारं जै ण हिन्सही किंचिर्" ज्ञान पाने का सार तो यही है ज्यो किंचित मात्र भी किसी जीवों की हिन्सा न करै और न धर्म समझें, जिस कर्त्तव्य में जिन आज्ञा है वोही कर्त्तव्य करने कराने और अनुमोदने में धर्म है बाकी सब संसारी व्यवहार है, धर्म पुन्य नहीं ऐसो ही प्ररूपन स्वामी भीखनजी ने की है।

॥ ढाल स्वामी भीखनजी कृत ॥

॥ दोहा ॥ आज्ञा श्री अरिहन्तनी, निर्वद्य दान मे जाण ॥ सावद्य दानमें स्थापने मूरख मांड़ी ताण ॥ १ ॥ मिश्र धर्म प्ररूपनें, नहीं सूत्र नो न्याय ॥ लोकांने गेरै फन्द मे, कूड़ा जोज लगाय॥ २ ॥ अव्रत आस्रव म कह्यो, श्रीजिन मुख से आप ॥ सेयां सेवायां भलो जाणियां, तीनूं करणां पाप ॥ ३ ॥

व्रत धर्म श्रीजिनकह्यो, अव्रत अधर्म जाण ॥ मिश्र मूल दीसे नहीं, करै अज्ञानी ताण ॥ ४ ॥

भावार्थ ।

प्रिय पाठकों ज्ञान नेत्रों द्वारा देखो श्री अरिहन्त महाराज की आज्ञा निर्वद्य दान में है, सावद्य दानमें आज्ञा नहीं है, और जिहां श्री अरिहन्तों की आज्ञा है वहां ही धर्म है, लेकिन मूर्ख लोक लोकोंसे मिलती प्ररूपना करके सावद्य दान को स्थापते हैं याने सावद्य दान देने दिलाने में जिन प्ररूपित धर्म समझ रहे हैं कहते हैं जीवों की हिन्सा हुई तथा आज्ञा बाहर कार्य किया वो पाप है, और साता उपजाई वोह धर्म है, इस रीत से दोनूं मिलके मिश्र हुआ, इस तरह उपदेश देके भोले लोकों को फन्द में गेरते हैं अनेक द्रष्टान्त देते हैं लेकिन यह नहीं सोचते के दान लेने वाला अव्रती है या सर्व व्रती? यदि अव्रती है और उसे वा लिया हुआ दान भोग नें से अव्रत पुष्ट होगी या व्रत अगर अव्रत सेवा है तो अव्रत सेवाने वाले को धर्म कैसे होगा, श्री जिनराज ने तो अव्रत आस्रव कहा है, अव्रत द्वारा पापका बन्ध कहा है, अव्रत सेयां सेवायां भलो जाणियां एकान्त पाप है, तीर्थंकरों ने व्रत धर्म कहा है और अव्रत को अधर्म कहा है, किन्तु व्रत अव्रत दोनूं मिलके मिश्र नहीं कहा है, जिस को व्रत अव्रत का ज्ञान नही है वो मूर्ख लोक पक्ष में पडके व्यर्थ ताण याने जिद्द करते हैं, देखो भगवान ने अठारह पाप कहा है सो किञ्चित् सेने सेवाने से और भला जाणने में धर्म नहीं हैं ।

॥ ढाल ॥

जिन भाख्या पाप अठार, सेयां नहीं धर्म लिगार, शंकामत आणज्यो ए ॥ सांचो करि जाणज्यो ए ॥ १ ॥ जो थोड़ो घणों करै पाप, तिणथी होय

सन्ताप, मिश्र नहीं जिन कह्यो ए ॥ समदृष्टि सरधियो ए ॥ २ ॥ कोई कहै अज्ञानी एम, श्रावक पोषां नहो केम, भाजन रतनां तणों ए ॥ नफो अति घणों ए ॥ ३ ॥ तिणरो नहीं जाणै न्याय, त्यानें किम आंणौजे ठाय, वेश्रो घालियो ए झगड़ो झालियो ए ॥ ४ ॥ इव सुणज्यो चतुर सुजाण, श्रावक रतनां री खाण, व्रतां करि जाणज्यो ए ॥ उलटो मत ताणज्यो ए ॥ ५ ॥

भावार्थ ।

प्राणातिपात १ (जीवहिन्सा) मृषावाद २ (झूंठ बोलना) अदत्ता दान ३ (चोरी करना) मैथुन ४ (कुशोल सेना) परिग्रह ५ (द्रव्य रखना) क्रोध ६ (क्रोध करना) मान ७ (अभिमान, दर्प करना) माया ८ (कपटाई करना, धूर्त्तता) लोभ ६ (धनकी लालसा इच्छा, राग १० स्नेह करना) द्वेष ११ (परायेका बुरा चिन्तना) कलह १२ (लड़ना, झगड़ना) अभ्याख्यान १३ (झूंठ वार्ता कहना) पिसुन १४ (चुगली करना) पर परिवाद १५ (पराये की निन्दा करना) रति अरति १६ (मनसा माफक वस्तु पै खुश होना और अनिच्छित वस्तु पै नाराज होना) माया मृषावाद १७ (कपट सहित झूंठ बोलना) मिथ्या दर्शन शल्य १८ (मिथ्या शरधना) यह अठारह पाप कहे हैं जिने सेवने से किञ्चित् मात्र धर्म नहीं है यह सत्य जानना चाहिये इसमें जरा भी शंका नहीं रखना इन अठारों पापों में से थोड़ा या वहुत पाप करै वो संताप दायक है यदि थोडा करै थोड़ा दुःख दायक है और वहुत करै वहुत दुःख दायक है, किन्तु यह नहीं हो सकता के वहोत करे वो पाप, और थोड़ा करै वो धर्म, जिनेश्वर ने यह नही कहा अगर थोड़ा पाप करने से

ज्यादा धर्म हो तो थोड़ा पाप कर लेना चाहिये या पाप और धर्म दोनूं मिलकर मिश्र होता है कदापि मिश्र नही ऐसा शरधना सम्यक द्रष्टिके लक्षण है, कई अज्ञानी कहते हैं श्रावक को च्यारूं आहारों से पोषना चाहिये क्योंकि श्रावक व्रतमयी रत्नों की खान है, याने भाजन है उसे खिलाने से बहोत नफा है, श्रावक भोजन करके व्रत पच्चखान करेगा तो जिमाने वालेको भी उसका हिस्सा आवेगा इसलिये श्रावक को खिलाना धर्म है ऐसी कहते हैं, किन्तु यह नहीं विचारते श्रावक आहार किया सो व्रत या अव्रत है यदि अव्रत ऐसा है तो सेवाने वालों को धर्म कैसे होगा, वोह व्रत सेता है सो रत्न है या अव्रत सेता है सो रत्न है। उस के पास व्रत मयी रतन है या अव्रत मयी ऐसा विचारना आवश्यक है अब द्रष्टान्त कहते हैं।

॥ ढाल ॥

कोई रूंख बागमे होय, आम्ब धत्तूरो दोय, फल नहीं सारखा ए॥ कोज्यो पारखा ए ॥ ६ ॥ आम्बा सूं लिव ल्याय, सींचे धत्तूरो आय, आशा मन अति घणी ए॥ आम्ब लेवण तणी ए ॥ ७ ॥ आम्ब गयो कुमलाय, धत्तूरो रह्यो दिढ़ाय, आवी नें जोवे जरें ए ॥ नयणां नीर भरे ए ॥ ८ ॥ इण द्रष्टान्ते जाण, श्रावक व्रत अम्ब समान, अव्रत अलगी रही ए ॥ धत्तूरा सम कही ए ॥ ९ ॥ सेवावे अव्रत कोय, व्रतां स्हामों जोय, ते भूला भरम मे ए ॥ हिन्सा धर्म मे ए ॥ १० ॥ अव्रत से बंधे

कर्म, तिणमें नहीं निश्चै धर्म, तीनूं करण सारखा ए ॥ बिरला पारखी ए ॥ ११ ॥ खाधां बन्धे कर्म, खवायां मिश्र धर्म, ए झूंठ चलावियो ए ॥ मूरख मन भावियो ए ॥ १२ ॥ मिश्र नहीं साख्यात, ते किम सरधीजे बात, अकल नहीं मूढ में ए ॥ पड़िया रूढ में ए ॥ १३ ॥ पोते नहीं बुद्धि प्रकाश, वलि लाग्यो कुगुरां री पाश, निर्णय नहीं करै ए ॥ ते भव सागर परै ए ॥ १४ ॥

भावार्थ।

जैसे किसी बागमें आम्ब और धत्तूरे दोनूं तरह के दरखत हैं किन्तु उनके फल एकसा नहीं हैं, कोई मूर्ख मानव धत्तूरे को आम्ब का दरखत समझ कर पानी देने लगा, और आशा करने लगा ऋतु समय मुझे यह वृक्ष वहोत मिष्ट आम्ब देगा ऐसा खयाल से हमेशा धत्तूरे को पानी आम्ब का वृक्ष समझ कर देता रहा तब आम्ब वृक्ष सूख गया और धत्तूरा प्रफुल्लित हो गया, कितनेक समय बाद धत्तूरा के समीप आके आम्र देखने लगा तो एक भी नही मिला तो अत्यन्त दुःखित होके रोने लगा, इस दृष्टान्त करके बुद्धिमानो को समझना चाहिये आम्ब समान व्रत और धत्तूरा समान अव्रत है, तब व्रतकी आशा से अव्रत सेने सेवाने से व्रत मयी आम्र फल कैसे होगा अव्रत सेवाने से तो अव्रत रूप धत्तूरा फल की प्राप्ती होगी, अव्रत सेने सेवाने में तो अशुभ कर्मका ही बन्ध होगा, श्रावक के त्याग है वो व्रत हैं, जिस सावद्य कार्य का त्याग नहीं हो वो अव्रत है परं दोनूं मिलके मिश्र ऐसा नहीं हो सकता अव्रतका सेना वो प्रथम करण, सेवाना वो दूसरा करण, सेते हुए को अच्छा समझना ए तीसरा करण है, जिस कर्त्तव्य से पापकर्म प्रथम करण से लगता

है तो द्वितीय और तृतीय करणसे धर्म ए कैसे हो सकता है खाने वालो को पाप, और खिलाने वालों को धर्म, ऐसी मिथ्या प्ररूपणें वाला मूर्ख और अजान लोगों को अच्छे लग रहे हैं, उन निर्बुद्धियों को स्वयं तो बुद्धिमयी प्रकाश नहीं, और कुगुरुवों के मिथ्या शरधा मयी जालमे फँसके भव भ्रमण रूप कुआ याने कूपमें पड़ रहे हैं।

॥ ढाल ॥

साधू संगति पाय, सुणो ऐक चित्त लगाय, पक्षपात परिहरे ए, ज्यों खबर बेगी परै ए ॥ १५ ॥ आनन्द आदिदेजाण, श्रावक दशूं बखाण ते पड़िमा आदरी ए, चरचा पाधरी ए ॥ १६ ॥ जे जे किया छै त्याग, आणीमन बैराग, तेकरणी निरमली ए, करीने पूरेरली ए ॥ १७ ॥ बाकी रह्यो आगार, अव्रत में आख्यो आहार, अपणी जाति मे ए, समझो दूण बातमे ए ॥ १८ ॥ अव्रत मे दे दातार, ते किम उतरे भवपार, मार्ग नहीं मोखरो ए, छान्दो दूण लोकरो ए ॥ १९ ॥ दाता अन्न शुद्ध थाय, पात्र अव्रत मे ल्याय, ते किम तारसी ए, किम पार उतारसी ए ॥२०॥ उपासक उवाई अङ्ग, वलि सुयगड़ाङ्ग, सूत्र थी उद्धरी ए, अव्रत अलगी करी ए ॥ २१ ॥ जूनों गूढ मिथ्यात त्यांरे किम बैसे ए बात, कर्म घणा सही ए, समझ पड़े नहीं ए ॥ २२ ॥

भावार्थ।

इसी लिये कहना है निर्लोभी निर्ग्रंथ साधुवोंकी संगति पाके दान का अधिकार पक्षपात को छोड़ कर सुनिये तव सुपात्र और कुपात्र दानका फल मालूम हो जायगा, देखो आनन्दादि दश श्रावक प्रतिमा याने प्रतिज्ञा करी वो धर्म है और जो आगार रख्खो वो अधर्म है, साधूवत गौचरी करके आहार पानी अपनी जाति में से लाके भोगते थे वो अव्रत में हैं, वैराग्य भावसे जो त्याग करते थे वो व्रत सवर था, तो दातार उन्हे अव्रत सेवाता था या व्रत ? यदि अव्रत सेवाता था तो अव्रत सेवाने में धर्म कैसे होवेगा, और वो कार्य उन्हे संसार मयी समुद्र से पार कैसे उतार सकता है, उपासगदसा उवाई सूत्र और सुयगड़ा अङ्गमें व्रत अव्रत का निर्णय खुलासा कहा है लेकिन दीर्घ कर्मी जीव तब भी समझते नहीं हैं।

॥ ढाल ॥

आगम नी दे साख, श्री वीर गया छे भाख, भवियण निर्णय करे ए, भव सायर तिरे ए ॥ २३ ॥ देई सुपात्र दान, न करे मन अभिमान, ते संसार प्रति करे ए, शिवरमणी वरे ए ॥ २४ ॥ दानसूं तिरिया अनन्त, ते भाख गया भगवन्त, ते दान न जाणियो ए, न्याय न छाणियो ए ॥ २५ ॥ साधु सुपात्र सोय, दाता सूझतो होय, असणादिक शुद्ध दियो ए, ते लाभ मोटो लियो ए ॥ २६ ॥ साधु सुपात्र सोय, दाता सूझतो होय, असणादिक शुद्ध नहीं ए, वैरायां नफो नहीं ए ॥ २७ ॥ कोई मिलै मोटा अणगार,

दाता अशुद्ध विचार, असणादिक शुद्ध सही ए, वैरायां नफो नहीं ए ॥ २८ ॥ मिलै कुपात्र कोय, दाता अन्न शुद्ध होय, पड़िलाभ्यां तिरे नही ए, सूत्रमें इम कहीये ॥ २९ ॥ आयुं मन विवेक, तीनामें शुद्ध नही एक, प्रतिलाभ्यां मैं धर्म नहीं ए, श्रीजिन मुखसे कही ए ॥ ३० ॥ दाता अन्न पात्र विचार, तीनूं अशुद्ध निहार, तो धर्म न भाषे जती ए, झूंठ जाणो मती ए ॥३१॥ इति ॥

भावार्थ ।

जिन भाषितागम याने शास्त्रों में जगह जगह श्रीवीरप्रभुने कहा है सुपात्रों को निरदूषण दान देना यही शिव मार्ग है, वाकी लौकिक दान देना मुक्ति मार्ग नहीं है, लज्यादान भयदान, वगैरह दश प्रकारके दानका अधिकार श्रीठाणांग सूत्रमें है, जिसमें अभय दान और धर्म दान यह दोनूं ही संसार समुद्र से तिरणे का उपाय है इन्होंका निर्णय भव्य जीवों को करणा चाहिये, एकेन्द्री को भय और पंचेन्द्री का पोषण करने में कदापि धर्म नहीं हो सकता षट्कायों की विराधना करे वो सुपात्र नहीं है, जीव हिन्सा करे झूंठ बोलै चोरी करै मैथुन सेवै और परिग्रह रक्खे वो तो कुपात्र ही हैं, सुपात्र तो वही है, जो एकेन्द्री आदि सब जीवों को न मारे, झूंठ न बोलै, चोरी न करै मैथुन न सेवै, परिग्रह न रक्खे, ऐसे सुपात्र को ही उचित और निर्दोष दान देने में धर्म है, जैन शास्त्रोंमें ऐसा ही अधिकार है ऐसे दान से ही धर्म है, सुपात्र दान देके अभिमान न करै तब ही प्रति ससार होता है, श्रीविपाक सूत्र में सुबाहु कुमार आदि दश जणोंने शुद्ध साधू निग्रंथ निरलोभी महात्माओं को दान देके प्रति संसार किया है और महा पुन्योपार्जन किया है, यही क्यों सुपात्र दानसे अनन्त जीव

संसार समुद्र से तिरे हैं, पात्र शुद्ध साधू मुनिराज, दातार शुद्ध निर्दूषण देनेवाला, और वित्त शुद्ध अशणादि च्यारू आहार, साधू के निमित्त न किया हुवा तथा सचित्तादिक से अलग, इन तीनोंका योग मिलने से लाभ होता है, इन तीनू में से अगर एक भी अशुद्ध है तो कुछ फायदा नहीं होता न्यायाश्रयी को ज्ञान दृष्टि से देखना परमावश्यक है, जो समदृष्टि जिन आज्ञा बाहर धर्म नही समझते वो कभी जिन आज्ञा बाहर के दान में कदापि धम नहीं समझ सकते ।

महानुभावों ! क्रोधादि च्यारू कषायों का अनुदय समय पक्षपात रहित होके खयाल करो हिन्सादि पंच आस्रव द्वार सेने सेवाने और अच्छा समझ ने में जिन प्रणीत धर्मका तो लेश मात्रभी नहीं है, हीनाचारी और निन्दकों के कहने से शुद्ध संयम पालनेवाले संयतियों की निन्दा मत करो, सब जीवों से मैत्री भाव रखना ही परम धर्म है क्रोध करना, लड़ना, झगड़ना, असत्य आल देना और धर्मात्माओं से ईर्षा आदि कार्यों से तो महापाप कर्म का बन्ध होता है. क्षमा शील संतोषादि ही करना धर्म कार्य है, अपने से व्रत न पले और पालने वालों से द्वेष रखे भगवत ने श्रीआचाराग सूत्र में द्विगुणा मूर्ख कहा है, इसलिये नम्रता पूर्वक ऊपर कहा और कहते हैं अगर तुम्हे इस संसार समुद्र से तैरना हैं जो अनादि कालसे जीव अष्ट कर्म वर्गणा से लिप्त है उनसे अलग होके स्वसत्ता प्रगट करनी है तो ईर्षा और द्वेष को छोड़ कर एकबार स्वामी भीखनजी कृत ग्रन्थ पढ़ो, जिस वीर प्रभु को भगवन्त सर्वज्ञ मान रहे हो और उनके वचनों की पूर्ण आस्था है तो उन के वचन जो अङ्ग उपाङ्ग सूत्र है वो शुद्ध साधुवों के पास सुनो, टीका कारों ने या चूर्णा कारों ने टवा करने वालों ने जो अर्थ सूत्रसे मिलते किये हैं उन्हे सत्य समझो परन्तु किसी जगह सूत्र विपरीतार्थ किया है उन ही अर्थ को सत्य समझकर हीणाचारकी पुष्टी मत करो, जैन मजहब का सारान्श जिन आज्ञा

धर्म है, जिहा जिन आज्ञा नही वहां निश्चय अधर्म है, उस कर्त्तव्य से एकान्त पाप कर्म का ही बन्ध है, सूत्रों में जगह जगह दोय धर्म कहे हैं श्रमण धर्म और श्रमणोंपासक धर्म, श्रमण धर्म तो पंच महाव्रत मयो, श्रमणो पासक धर्म द्वादश व्रतमयी किन्तु ऐसा कही भी नहीं कहा के श्रमण धम तो पंचमहाव्रत मयी है और श्रमणो पासक धर्म व्रत अव्रत मयो है, जैसा श्रमणोपासक धर्म द्वादश व्रत रूप जिनेश्वर ने कहा है वैसा ही श्रमणोपासक धर्म श्री भिक्षु स्वामी ने कहा इसलिये कहना है यथा शक्ति द्वादशव्रतों को आराधना निर्दूषणपणें करो, और श्रमण धर्म की आराधना करने की इच्छा रक्खो तब श्रावक कहलावोगे केवल नाम मात्र श्रावक कहलाणे से और हिंसा में धर्म समझने से श्रावक पद जो पंचम गुणस्थान हैं उसकी प्राप्ती कभी नहीं होगी।

आपका हितेच्छू और गुणवानोंका दास।

श्रावक जौहरी गुलाबचन्द लूणियां

जयपुर

॥ अथ द्वादशविध श्रावक धर्मः ॥

स्वामी श्रीभीखनजी कृत

द्वादश व्रतों को ढालें।

॥ दोहा ॥

पांच अणुव्रत परिवड़ा, तीन गुणव्रत सार ॥
शिखा व्रत च्यारौं चतुर, तेहनूं करो विचार ॥ १ ॥
पहिला में हिन्सातजे, दूजे झूठ परिहार ॥ तीजे

अदत्त चौथे मिथुन, पंचमें तजै धन सार ॥ २ ॥
पहिलो गुण व्रत दिशितणूं, दूजै भोग पचखाण,
तीजै अनरथ परिहरै ॥ ए तीन गुण व्रत जाण ॥३॥
सामायक पहिलो सिखा, दूजो संवर जाण ॥ तीजो
पोषध कहिजिये, चौथो साधुने दान ॥ ४ ॥ यां
बारह वरतांतणो, कहियै छै विस्तार ॥ भाव धरी
भवियण सुणो, मन में, आंण बिचार ॥ ५ ॥

भावार्थ।

श्रावक के बारह व्रत है, जिनमें पांच अणुव्रत, तीन गुण व्रत, च्यार शिक्षा व्रत हैं, यह पांच अणुव्रत याने सूक्ष्म व्रत है जिस जिस भांगे से त्याग करै वो आगार सहित है, इसलिये अणुव्रत, तात्पर्य देशतः श्रावक के, और साधू के सर्वतः याने आगार रहित है इससे पंच महाव्रत कहे हैं, मन वचन काया के तीनयोग और करणां कराणां और अनुमोदना ए तीन करण है, इनके परस्पर भांगे बनाने से ४६ भांगे होते हैं, जिसमें जैसे जैसे भांगै त्याग करै वह देशव्रत है आगार रक्खै वह अव्रत हैं, इस्में अणुक्त कहतां छोटे व्रत हैं, वोह पांच प्रकार के हैं अहिंसा १, अमिथ्या २, अदत्त ग्रहणनिवर्तन ३, ब्रह्मचर्य ४, अपरिग्रह ५, यह पांच अणुव्रत कहे हैं,,।

दिशिमर्यादा १, भोग उपभोग परिहार २, अनर्थदण्ड निवृत्ती ३, ए तीनूं पंच अणुव्रतों को गुणदायक है इसी व्रत्त कहे है।

सामायक १, कालमर्यादा सहित पंचास्रवत्याग सो संवर हैं २, पोषध अहोरात्रिप्रमाण पचःस्रवकेत्याग ३, और चौथा अतिथि संविभागव्रत ४ वो शुद्धसाधू निर्ग्रंथको शुद्धदान १४ प्रकार का देनेसे होता है।

यह च्यार शिक्षाव्रत है सर्व मिलके १२ द्वादशव्रत हैं इनका विस्तार पूर्वक वर्णन बुद्धिवानजन विचारैं ।

॥ ढाल ॥

जिन भाष्या पाप अठार ॥ एचाल में ॥ श्रावक नां व्रत बार, पालै निर अतीचार, तेह दुरगति नहीं पड़ै ए, भवसायर तरै ए ॥ १ ॥

भावार्थ ।

उपरोक्त यह जो श्रावक के द्वादश व्रत हैं उनको अतीचार रहित पालने वाला जीव दुर्गति मे नही जाता और सायर अर्थात् संसार रूप समुद्र से तिरता है।

॥ ढाल ॥

पहिलो व्रत इम जाण, तिणमें हिंसा ना पच-खाण, हिंसा त्रस तणी ए, बीजी थावर भणी ए ॥ २ ॥

भावार्थ ।

सद्गुरू कहते हैं समदृष्टि जीवो! श्रावक का प्रथम व्रत यह है के हिन्सा करने का त्याग करै। वोह हिन्सा दोय प्रकार की है एक तो त्रस हिंसा, दूसरी स्थावर हिंसा, त्रस हिंसा च्यार प्रकार की है बेंद्री की १, तेइंद्री २, चउ इंद्री ३, पंचेंद्री ४, जीवोंको त्रिकरण, और तीन जोग से नाश करणा, और स्थावर हिंसा पांच प्रकार की पृथ्वी १ पाणी २ वायु ३ अग्नि ४ और वनस्पती ५ यह पांच प्रकार के जीवोंको त्रिकरण और ३ योग से प्राणनाश करणा, उपरोक्त दोनू प्रकारकी हिसाका जितनां जितनां त्याग करै वो प्रथम श्रावक व्रत है तब गृहस्थ बोला .—

॥ ढाल ॥

वसतां गृहस्थावास, हिंसा हुवै तास, आरम्भ बिन करैए, पेट किम भरै ए ॥ ३ ॥

भावार्थ।

मैं गृहस्थाश्रम मे रहता हूं हिन्सा हो रही है आरंभ विना उदर-पूरना किस तरह होय इसलिये—

॥ ढाल ॥

करूं त्रसतणा पचखाण, स्थावरनों परिमाण भेद त्रसतणाए, ज्ञानी कह्या घणा ए ॥ ४ ॥

भावार्थ।

त्रसजीवों को मारने का त्याग और स्थावर के प्रमाण उपरान्तका मारणेका त्याग करू किन्तु हे गुरु त्रस हिंसा के भी अनेक भेद ज्ञानी देवोंने कहे हैं एक अपराधीकी, दूसरी निर अपराधी की।

॥ ढाल ॥

कोई मूंनें घालै घात, म्हारो अपराधी साचात, खमता दोहिलोए, नहिं मूंने सोहिलो ए ॥ ५ ॥
सांतो दे ने लेजाय, अथवा लूटै आय, खून करै जरां ए, मूंस नहिं तरांए ॥ ६ ॥

भावार्थ।

सर्वथा प्रकार त्रस हिंसाका भी मुझ से त्याग होना मुश्किल है क्योंके कोई जीव मुझको मारनेको आया व मेरा अपराध किया वो मेरे से नही खमा जाता, क्षमना भी सहज नही है, अथवा मेरे पास द्रव्य है उसको कोई चोर मकान फोड़कर ले जाना चाहे या लूटना चाहे वा खून करे तो उसे मारने का मेरे त्याग नही कारण ऐसी दृढता नहीं।

॥ ढाल ॥

बिन अपराधी होय, तिणरी हिन्सा दोय, मारै जाणतां ए, वले अजाणतां ए ॥ ७ ॥

भावार्थ ।

निर अपराधी जीवकी हिन्सा भी दोय प्रकार की है एक तो जाण के दूसरी अणजाणते यदि अजाणके आगार रखके जाणते त्रस हिन्सा का योग करूं तोभी निर्वाह होना कठिन है।

॥ ढाल ॥

म्हारै धान जोखणरो काम, गाड़ी चढ़ जावूं गाम, खेती हल खड़ूं ए, सूड़ निनाण करूं ए ॥८॥ तिहां बहु जीव हणाय, किम पालूं मुनिराय, नहीं समझे इसो ए, गृहवासैं बस्यो ए ॥ ९ ॥ आकूटीने स्वाम, जीवमारणरो काम, व्रतछे जाणतां ए, नहीं अजाणतां ए ॥ १० ॥

मेरे धान कहता अनाज जोखण याने वजन करने का काम भी है उसमें ईली घुण आदि बहुत त्रस जीवोंकी हिन्सा हैं अथवा गाड़ी प्रमुख सवारी में बैठके देशान्तर व ग्रामान्तर जाना होता है तब भी त्रसहिंसा बहुतसी होती हैं और खेती के वखत हल चलाते वा सूड निनाणी अर्थात् धान्य सिवाय इतरघास प्रमुख को खोदने में कीड़ादि त्रस जीवोंकी हिन्साके होने का ठिकाना है इस वास्ते अजाण हिंसाका भी त्याग होना कठिन है क्योंके गृहवास में वसता हूं, चलाके मारने की इच्छा से भी अर्थात् निरअपराधी त्रस जीवोंके मारनेका त्याग करता हूं वो भी अजाण के नही है क्योंके ।

॥ ढाल ॥

म्हारे इसड़ी ईर्या नाहिं, चालूं अन्धारा मांहि
वस्तु ओऊं पूजूं नहीं ए, लेऊं मूकूं सही ए ॥११॥

भावार्थ ।

मैं ऐसा ईर्यासुमतिवान् नहीं हूं के अंधेरे में चलूं जिस समय देख देखके चलूं अथवा पूञ्ज पूञ्ज के वस्तुमात्र को मेलू उठाऊं तथा देते लेत वख्त वस्तु जिसको प्रति लेखना करूं ।

॥ ढाल ॥

थाप लाठीरा नेम, मोसूं चालै केम, चउपद हांकणा ए दो पद हटकणा ए ॥ १२ ॥ क्रमकरतां जीव मराय, जीव काया जुदा थाय, इणआ बुद्धि नहिंकरी ए, विणबुद्धे मरी ए ॥ १३ ॥

भावार्थ ।

थाप कहिये चाटा और लाटी यानें लकड़ी डंडा प्रमुखसे त्रसजीव को न मारणेका व्रत भी मुझ से नहीं निभ सकता कारण चतुष्पद ज्यांनवरों को हांकना वा द्विपद दास दासी प्रमुख पुत्र पौत्रादि कुटूम्बको शिक्षा का काम पड़े तो मारणे पीटने में हिंसा कदाचि हो जाय इसलिये नहीं निभ सकता तो अब ।

॥ ढाल ॥

इणवा बुद्धें होय, जीव न मारूं कोय, सउपयोग करीए, ऐसो विगत धरीए ॥१४॥ हिंसानां पचखाण, में कीधा परिमाण, जावज्जीव करीए, करण जोग धरीए ॥ १५ ॥

भावार्थ ।

मारने की बुद्धि करके निरअपराधि त्रसजीवको उपयोग सहित मारने का त्याग जावज्जीव पर्यन्त करता हूं वो तीन करण तीन जोग से ४९ भांग होते हैं जिस में जैसे २ भांगे से त्याग किया वो प्रथम अणुव्रत है, और जिस जिस भांगेका त्याग नही किया वहअव्रतास्त्रव है,

॥ ढाल ॥

धन्य जे ले वैराग, ज्यारे सर्व हिन्साराा त्याग, त्रस थावरतणीए, अनुकम्पा घणीए ॥ १६ ॥ हूं गृहस्थ मुनिराज, म्हांरे आरम्भसुं काज, अव्रत बहु घणीए त्रसथावरतणीए ॥ १७ ॥ धनधन साधु मुनिराय ते सुमति सुमतें थाय, जीवे जिहां भणीए, नही चूके अणीए ॥ १८ ॥

भावार्थ ।

धन्य है उन पुरुषों को जिनके ३ करण ३ जोग से हिंसा करने का त्याग है, त्रस और थावर जीवों की दया हैं, किसी जीव मात्र की विराधना नही करते हैं, उन महा ऋषियों का जन्म सफल है, हे मुनि-राज मैं गृस्थाश्रम में वसता हूं मेरे आरम्भ करने का काम पड़ता ही रहता है चलते फिरते बैठते उठते सोते खाते पीते ईत्यादि कार्यो में हिन्सा होने का ठिकाना है और त्रस थावरों के हिन्सा की अव्रत बहुत है, सर्व विरती तो साधू मुनिराज ही हैं वो पांच सुमति तीन गुप्ति पञ्च महाव्रत पाले हैं जावज्जीव पर्यंत शिव साधन से कुशाग्रामात्र भी नहीं चूकते, उन पुरुषों को धन्य है ।

॥ ढाल ॥

धृग धृग गृहस्थावास, म्हारै मोटो पड़ियो पाश

हिन्सा होवैं घणीए, तेह नही हित मो भणीए, ॥ १९ ॥ ज्ञानादि अंकुश ल्याय, मननें आणी ठाय। हिंसा टालस्यूंए, दया पालस्यूंए ॥ २० ॥ धन धन साधूशूर, ज्यां लफरा कीधा दूर। इस विध मो प्रतै ए, खातो नही खतैए ॥ २१ ॥

॥ इति प्रथम व्रत ढाल ॥

॥ भावार्थ ॥

धृक्कार है गृहवास को और मेरे को जो मैं ऐसे अनित्य गृहस्था-श्रम में बस रहा हूं और स्वार्थ के सगे स्वकुटुम्बियों को त्रस थावर जीवों की हिंसा मयी पाश में पड़िके पोष रहा हूं, यह कर्त्तव्य मुझे हितकारी नही है किन्तु दुःखदायी ही है, परन्तु ज्ञानादिक अँकुस से मनोमय हाथी को अपने ठिकाने पर लाऊंगा और जिस दिन मेरे सर्वथा प्रकारे हिंसा का त्याग होगा वही दिन मेरे परम लाभदायक होगा, अभी तो सिर्फ स्थावर और त्रस जीवों की हिन्सा का त्याग मर्यादा उपरान्त किया है वह मेरा देशव्रत है, आगार रक्खा है वह व्रत नहीं अव्रतास्रव है, पर जहां तक बने जहां तक हिंसा टालके दया पालूंगा, धन्य है उन साधू महात्मा शूरवीर पुरुषों को जो मोहमयी प्रवृत्ति पाशको तोड कर धर्म मार्ग में चल रहे हैं, इस प्रकार का हिसाब खाता मुझसे नही होता।

अथ दूजोव्रत

दोहा

दूजो व्रत श्रावक तणो, करै झूठ परिमाण, त्यागै माठो जाणने, पालै जिनवर आण ॥ १ ॥ झूठा बोला मानवी नहीं ज्यांरी परतीत, मनुष जमारो हारनै, नरकां होय फजीत ॥ २ ॥

॥ भावार्थ ॥

झूठ याने असत्य बोलने का प्रमाण उपरांत त्याग करे वो श्रावक का दूसरा व्रत है, और आगार रक्खे बोले बोलावे बोलते को भला जाणे वह अव्रताश्रव है उससे पाप कर्म का बंध होता है इसलिये असत्य भाषण को महा खराब और नीच कर्म समझ कर त्याग करे जिनेश्वर की आज्ञा प्रमाण सत्य बचन बोले, झूठ बोलने वाले मनुष्य कदाचित् सत्य भी कहै तोभी उनका वाक्य की प्रतीति नहीं होती ऐसे जीव वृथा मनुष्य जन्म खोते हैं और नरकों के दुःख सहन करते हैं, हे भव्यजनों इसीलिये सद्गुरु कहते हैं।

॥ ढाल ॥

जिन भाष्या पाप अठार एदेशी

झूठ तणा पचखाण, नाना मोटा जाण।
पचखे मोटकाए, कांइ एक छोटकाए ॥ १ ॥

॥ भावार्थ ॥

झूठ दोय प्रकार की है एक तो छोटी, याने किञ्चित् दूसरी मोटी अर्थात् जिसके बोलने से राजदंड करै और लोगों मे निन्दा हो ए द्विविध झूठ बोलने का त्याग करो।

॥ ढाल ॥

छोटो न बोलूं केम, म्हारे गृहवासे सूं प्रेम,
विणज सौदा करूं ए, मनमे लोभ धरूं ए ॥ २ ॥

॥ भावार्थ ॥

गृहस्थ कहता है हे महाराज आपने कहा वो तो ठीक है लेकिन मैं गृस्थाश्रम में हूं छोटे झूठ के त्याग नही निभ सकते वाणिज्यादिक में झूठ कहना ही पड़ता है कारण इसका लोभ है, लोभ के वास्ते झूंठ बोलना पड़ता है।

॥ ढाल ॥

मोटा पांच प्रकार, तेहनूं करूं परिहार, व्रत
करूं ऐसोए, मोसूं निभे जसोए ॥ ३ ॥

॥ भावार्थ ॥

मोटी झूठ पांच प्रकार की है उसका त्याग कर सकता हूं जैसा मुझसे निभे वैसा व्रत करना उचित है।

॥ ढाल ॥

किन्नाली ग्वाली जाण, तीजी भूमि पिछाण थापण
मोसो करीए, कूड़ो साख भरीए।

॥ भावार्थ ॥

मोटी झूठ पांच प्रकार की है किन्नाली अर्थात् कन्या के वास्ते १ ग्वाली याने गाय भैंस प्रमुख दूधवाले जानवरों के कारण २ तीसरी भूमि कहिए जमीन मकानात वगैरह के वास्ते ३ थापणमोसा याने किसी की अमानत चीज हजम करणा ४ कूड़ीसाक्षी वो है के मिथ्या गवाही देना ५।

॥ ढाल ॥

कन्यारा भेद अपार, करणो सूंम विचार, वरसां छोटकीए, तेहने कहिणो मोटकीए ॥ ५ ॥ गहली गुंगी होय, वले आंख नहिं होय, काणी मीमणीए, आंख्यां चीपणीए ॥ ६ ॥ काली कोडाली नारि, कांना न सुणै लिगार, टूंटी पांगलीए, बोलै तोतलीए ॥ ७ ॥ रोग घणू घटमांय, जीवारी आशा नहिं काय, वोलां ज्वरो तेजरोए, आवै एकान्तरोए ॥ ८ ॥ वले रोग छे रेन, जोव न पामे चैन, रक्त पित्त तणोए, दुर्गन्ध अति घणो ए ॥ ९ ॥ कूंवी डूंवी होय, वाटो बांकी जोय, छोटी वांफणीए, आंख्यां भांमणीए ॥ १० ॥ होणा वंशरी होय, तिणरी जात न जाणै कोय, आतो जावे जठेए; साख न भरै कठेए ॥ ११ ॥ रूपरोग ने खोड, वले वरसदे तोड़, अछतो नही भाखणोए, हुवै जिम दाखणोए ॥ १२ ॥ या बोलांरो स्वाम आय पड़ै कोई काम, घर मंडे जठेए, झूठ न बोलूं तठेए ॥ १३ ॥

॥ भावार्थ ॥

पाच प्रकार के झूठ ऊपर कहे हैं उनमें पहलो (कन्यालीक) सो कन्या के वास्ते मिथ्या बोलना वह अनेक प्रकार के हैं इसलिये जो सोगन करै वह विचार के करने से नियम का भंग नही होता, अनेक भेदों में से संक्षेप कहने हैं, जैसे छोटो ऊमर वाली को ज्यादह ऊमर की कहना, अथवा, गहली हो, गूंगी, आधो, कांणी मांजरी, आखें चोंपणी

हो, काली हो, कोडाली स्त्री. बहरी, टूंटी, पांगलो, तोतली बोलने वाली, महारोगणी जीवितासा विमुक्त. बेलान्तरो, तेजरो, वा एकान्तर ज्वरा-गमनवाली हो और महा रोग जिसका नाम खैन अर्थात् क्षयी सर्व धातु बलक्षय जिस से जीव क्षण भर भी आराम नहीं पा सके, फिर रक्तपित्त रोग, कुष्टादिक जिसमें अत्यन्त दुर्गन्ध हो, कुबरी ठिगनी, तिरछी झांकने वाली, वांकी देखने वाली, जिसके वांफनो गल छोटी हो गई हो; जिस से नेत्र डरावणे मालूम हो, अथवा नीच वंश की होय जिसकी जात कोई नहीं जानता हो वो जहां जावे वहां उसकी साख कोई भी नहीं भर सके, ऐसी अनेक तरह की कन्याओं के अर्थ मिथ्या याने बुरी को भली, वा भली को बुरी कहना तथा रूप रोग और खोट क्या हीनेन्द्री, और बूढी को छोटी कहना इत्यादिक असत्य का त्याग करना जैसा हो वैसा कहना, इत्यादिक बोलने में हे स्वामी किसी समय वा कोई कार्यवश से मिथ्या बोलने का ही प्रसंग आ पड़े जैसे विवाहादिक सम्बन्ध में झूठ बोलना पड़ता है, तो वहा कदापि त्याग करने वालों को झूठ नहीं बोलना, परन्तु

॥ ढाल ॥

हांसी मसकरी काज, म्हांरे सूंस नहीं मुनिराज पालता दोहिलोए, नही सूने सोहिलोए ॥१४॥ इत्यादिक परिमाण, मैं कीधा पचखाण, इमहिज पुरुष तणीए, कन्या ज्यों भाषणीए ॥ १५ ॥

॥ भावार्थ ॥

हास्य और मसकरी प्रसिद्ध है इनमें मेरे झूठ बोलने के सोगन नहीं है इसका प्रमाणोपरान्त जो सोगन किये हैं, वैसे ही पुरुष के वास्ते भी विचार लेनी कन्या की तरह से,

॥ ढाल ॥

इमही ग्वाली जाण, दूध तणों परिमाण, वैत न उचारणोए हुवे ज्यूं दाखणोए ॥ १६ ॥

॥ भावार्थ ॥

इसी तरह से गाय भैंस आदि के विषय में भी अनेक प्रकार का असत्य भाषण होता है जैसे व्यावत का कमी वेसी तथा दूध का वेसी कमी कहना यह गवालीक है, श्रावक को इसकी मर्यादा के उपरान्त त्याग करना, और जैसा हो वैसा कहना।

॥ ढाल ॥

भूमाली घरनें हाट, बोलै बाद नै घाट, धरती बावण तणोए, इत्यादिक घणोए ॥ १७ ॥

॥ भावार्थ ॥

भूम्मालीक अर्थात् पृथ्वी के शास्ते झूठ, मकान दुकान वगैरह के निमित्त जो असत्य भाषण और खेती वगैरह मे अनेक तरह से मिथ्या कहना ए भूमालीक है इसका प्रमाण उपरान्त त्याग करै वो श्रावक धर्म है।

॥ ढाल ॥

कोई धन सौंपे आय, हूं राखूं घरमांय, आयन मांगै जरांए, नटू नहीं तरांए ॥ १८ ॥ मांगै धणी ज्यो आय, बाप भाई नै माय, चोरो आय अड़ैए, राजा रोकै जरांए ॥ १९ ॥ जब झूठ बोलणरो नेम, राखूं व्रतसूं प्रेम, चोखो पालस्यूंए, दूषण टालस्यूंए ॥ २० ॥

मागे अनेरो आय, तो नटजाऊं मुनिराय, सूंस नहीं कियोए, लोभें चित्त दियोए ॥ २१ ॥

॥ भावार्थ ॥

चोथो झूठ थापण मोसा का त्याग याने अमानत में खयानत जैसे किसी ने धन त्याय के विश्वास कर सौंप दिया घर में मेल लिया जब उस मेलने वाले को जरूरत हुई मांगने लेने को आया उस वक्त नहीं नटणा, चो खुद मालिक मागे अथवा भाई मागने आवै, चाहे मा उसकी हो, या वहोरे उसके आ बैठें तब नटणे पर राज दरबार हो, राज रोक देवे, तब झूठ बोलने का नियम है, तो अपने व्रत को न छोडै, सच्चा हाल ज्यो हो सो कहै, शुद्ध व्रत पालन करे, सर्व दूषण को टाल कर मिथ्या न बोलै चो धर्म है।

॥ ढाल ॥

माख भरावे मोय, झूठ न बोलूं कोय, तै पिण मोटकी ए, नहीं छोटकी ए ॥२२॥ ज्योहूं बोलूं वाय, घर पैसारो जाय, भाषा टालणीए, पाछे बोलणी ए ॥ २३ ॥

॥ भावार्थ ॥

पांचवी मिथ्या कूडी साक्षी, याने झूठी गवाही देना, इस झूठ का भी मेरे त्याग है, साक्षी भी छोटी और बड़ी दो तरह की है, बड़ी तो चो है जिसके बोलने से राजा दंडे और लोक भडै, ऐसी झूठ के बोलने वाले को राज से दड हो और दुनिया में बदनाम हो, जिसके हाथ पैर नासिका छेद कर सजा पाने के बाद देश से निकालते हैं, छोटा वो के जो दूसरे का नुकसान तो उस झूठ मे है पर वो बदनामी और वह बड़ी सजा जिसमें न हो अथवा हास्य कुतुहल में बोले, इसलिये मोटी झूठ याने झूठी गवाही देना इसके त्याग, अथवा साक्षी देऊं जिसके

देने से दूसरे के घर का नाश होना हो तो इस से वैसी भाषा टाल कर बोलनी चाहिये झूठी गवाही नहीं देनी चाहिये ।

॥ ढाल ॥

करै झूठराभेद, त्यागो आण उमेद, मनोरथ जद फलै ए, झूठ छोटो टलै ए ॥ २४ ॥ करण जोग वालो एम, करै झूंठरा नेम, व्रत करै इसोए पोतै निभै जिसोए ॥ २५ ॥

॥ अर्थ ॥

इसलिये श्रावक को जितनी प्रकार से झूठ बोली जाती है उन्हें समझ कर चित्तकी उमंग से और उमेद से त्याग करना, और छोटी झूठ कौतूहलादि कारण बोली जाती है उसका त्याग करना, यह मनमें हमेशा रखता रहै, जिस समय सर्वथा झूठ बोलने का त्याग होगा वही दिन धन्य होगा. तात्पर्य ये है के दूसरा श्रावक व्रत करण योग युक्त असत्य बोलने का त्याग करै अपने से निभ सकै सो, कन्यालिक १ अर्थात् कन्या के निमित्त झूठ । ग्वालिक २ अर्थात् गाय आदिक निमित्त झूठ । भूमिक ३ अर्थात् जगा जमीन के निमित्त झूठ । थापण मोसा ४ अर्थात् अमानत मे खयानत । कूडी साख ५ अर्थात् झूठी साक्षी । यह पांच प्रकार की झूठ का त्याग करै वो श्रावक का दूसरा व्रत है धर्म है, त्याग नहीं वो अव्रत है आस्रव है जिस से पाप लगता है ।

॥ अथ तीजो व्रत लिख्यते ॥

॥ दोहा ॥

तीजो व्रत श्रावकतणूं, करै अदत्तरा त्याग, मनमे समता आणिने, चोढै भाव वैराग ॥ १ ॥ इहलोके जश

अति घणूं, परलोकै सुख पाय, भाव सहित आराधियां जनम मरण मिटजाय ॥ २ ॥ चोरी करै ते मानवी, गया जमारो हार, मनुष्यतणूं भव खोयने, नरकां खावे मार ॥ ३ ॥

॥ भावार्थ ॥

तीसरा व्रत श्रावक का अदत्त का त्याग, याने बिना दिये कुछ भी न लेना, ऐसे तीसरे व्रत को मन में समभाव ल्याके वैराग्य मे भाव चढावै जिससे इस लोक में जश कीर्त्ति और परलोक में अत्यन्त सुखी होय, और भाव सहित आराधना करने से पुनः पुनर्जन्म मरण जीव अनादि काल से कर रहा है सो मिटने सकता है और चोरी करने से मनुष्य इस भव में दुःखी होके नरक में जाता है वहां महापीड और मार सहनी पडती है, इसलिये श्रावक को चोरी करने का त्याग करना अवश्य चाहिये, यथाशक्ति त्याग करना वो श्रावक का तीसरा (३) व्रत है।

॥ ढाल ॥ चालतेहोज ॥

तीजो व्रत छै एम, करै अदत्तरो नेम, न करै मोटकीए, वली छोटकीए ॥ १ ॥

॥ भावार्थ ॥

सद्गुरु कहते हैं अदत्त का त्याग करै वो तीसरा व्रत है, चोरी (२) दोय प्रकार की है एक बड़ी एक छोटी।

॥ ढाल ॥

म्हानो किम त्यागूं स्वाम, म्हारै घास ईंधणारो काम, खिण खिण किणने कहूं ए, किहां किहां आज्ञा

लिऊंए ॥ २ ॥ म्हानो त्यागी ते धन्य, पिण महारो नहीं मन्न, चित चोखो नहीए, कर्म घणा सहीए ॥३॥ साथो दे गांठडी छोड़. धाड़ो करि तालो तोड़. वस्तु मोटी अछैए, धणी जाण्या पछैए, ॥ ४ ॥ इसा अदत्तरा त्याग मैं पचख्या आण बैराग, ते पिण परतणीए, नहि घर भणीए ॥ ५ ॥

॥ भावार्थ ॥

तब गृहस्थ बोल्या हे मुनिराज छोटी चोरी जो हास्य कुतूहल मे या अनेक छोटी वस्तु मालिक के विना पूछे लेना इसके त्याग करने की मेरी सामर्थ्य नहीं, क्योंकि मेरे घास ईंधण कहिये काष्टादिक जलाने को चीजें, हरेक जगह से किञ्चित मालिक से विना पूछे लेने का काम पडता है तो वारम्वार किस किस से पूछता फिरूं, इसलिये इनके त्याग मुझ से नहीं निभ सकने, इसमें छोटी चोरी का त्याग करे वो धन्य है, लेकिन मेरा मन बहुल कर्मी होने से नहीं हो सकता और ज्यो वडी चोरी याने धाडा देना साधा ऐंडा भीत फोड़ माल काढ़ लेना या पडी हुई गठडो वगैरह को उठा लेना धणी होते तथा ताला तोडना इत्यादि चोरी करने का त्याग मैंने वैराग्य ल्याके किया है लेकिन पराये घरकी चोरी के त्याग है अपने घरकी नही ।

॥ ढाल ॥

म्हांरा कुटुंबादिकमें माल, मासे पड़े हवाल, भोड़ घणीसहीए घरमे धन नहीए ॥ ६ ॥ जब तालो ल्यूं तोड़, वलो गाठड़ो छोड़, मांतोदे चोरस्यूंए, खोस ल्यूं जोरसूंए ॥ ७ ॥ इतरा मूंने आगार, ते नरक तणांदातार, रमणी वसपड्योए, जंजीर जुड्योए ॥८॥

राजा लेवै डंड, होय लोकमें भण्ड। चोरी नही करुंए इसो व्रत धरुंए ॥ ९ ॥ इसो व्रत मुनिराय, मोने द्यो पचखाय। जीऊं जिहां भणीए व्रत, चोरी तणीए ॥१०॥

॥ भावार्थ ॥

गृहस्थ कहता है मैंने जो चोरी करने का त्याग मर्यादा उपरान्त किया उसमें भी मेरे यह आगार हैं के मेरे द्रव्य की तंगी होने से और द्रव्य के अभाव से दुखी होने पर मेरे कुटुम्बियों का माल भींत फोड़ ताला तोड़ या जबरदस्ती से लेऊं तो मेरे त्याग नही, ए मेरे जो आगार हैं नरकादि दुखोंके देने वाले हैं लेकिन स्त्रीवश होने से कैदी की तरह माहे जंजीर से जकड़ा हुआ हूं, चोरी के करने से राज तो डड लेवै और दुनिया में बदनामी हो इसलिये चोरी नही करनें का व्रत अगीकार करा दो. हे मुनिराज! यावत जीवन पर्यन्त जो व्रत लिया है उसको खंडित नही करुंगा।

चोरीकरम चण्डाल, तिणथी पड़ै हवाल, दुख नरकां तणाए, लहै अतिघणाए ॥ ११॥ चोरी ले पर माल, तिणमें पड़ै हवाल, नरक निगोद तणाए, दुःख होवै घणाए ॥ १२ ॥ परधन लेवै ताड़, देवै पैलारे दाह, ते नरकना पाहुणाए, जात लजावणाए, ॥ १३ ॥ इहलोकमें उदय हुवै पाप, तो दुःख भुगतै आपो आप, मार घणी पड़ैए, बिण आई मरैं ए ॥ १४ ॥ तिणरा काटै हाथनै पाव, वलि शूली देवै चढाय, नकटो बूचो करैए नले मार घणी पड़ैए ॥ १५ ॥मूंआ पछे चोररी काय, नाखै खाईरे मांय, तिहां कुत्ता खायनेंए, बिगाड़ै कायनैए ॥ १६ ॥

वले कागा चांच सू मार, तिणरा डैया काढ़े बार शरीर तिण तणूंए विपरीत दीखे घणूंए ॥ १७ ॥ तिणरा देखे मातनैं तात, मनमें घणां सिधात, इण चोरीकरी परतणीए, लजाया हम भणीए ॥ १८ ॥ लोकां करै चोररी वात, ते सुणीमातनै तात, । बोले रोवताए. नीचो जोवताए ॥ १६ ॥ चोरी सूं दुःख अनन्त, तिणरो कहतां नावे अन्त । चिहुं गति भटकावणूंए, ते पाप चोरी तणूंए ॥ २० ॥ इम सांभल नरनार, चोरी न करो लिगार । समता रस आखिनेए, त्यागो जाणिनेए ॥ २१ ॥

॥ भावार्थ ॥

सत गुरू कहते हैं हे भव्य जीवो चोरी महा चाण्डाल कर्म है ऐसे कामसे अनेक तरह के दुःख होते हैं, तथा नरकोंमें अनन्त दु ख सहने पड़ते हैं, पराया माल चुरानेसे उस मालके मालिक के हृदयको महा दाह लग जाता है, इसीसे निगोदादिकके पाने वाले होते हैं, मनुष्य जन्म व्यर्थ खोके जन्म लज्जित करते हैं, अत्यन्त पापके फलसे इसी भवमे दुख अपणे कर्मका भोगते हैं फिर हाथ पग काटे जाते हैं, राज शूली चढ़ा देता है, सिर छेद भी कर देते हैं, नाक कान काट लिये जाते हैं अनेक प्रकारकी विटंवना करी जाती है, मर जाने पर चोरके शरीरको खाईमें डाल देते हैं, तो वहां कुत्ते कव्वे आदि अनेक दुर्दशा करै हैं, उसकी ऐसो व्यवस्था माता पिता देखकर महा लज्जित होकर भागते हैं, सो भी सामने नही झांक सकते, नीची नजर ही रखते हैं, कहते हैं इसने हमारे कुलको कलंक लगाके लज्जित कर दिया है, सतगुरू कहते हैं अत्यन्त दुःखदाई चोरी कर्म है इसके पापसे चतुर्गती

संसारमें भ्रमण करना पड़ता है, ऐसा सुनके चोरी नही करणेका व्रत समता ल्याके धारण करो।

कोई आणी मन वैराग, सर्वथको दे त्याग। करथा जोगां करिए, मन समता धरिए॥ २२ ॥ कोई सोंस-करी दे भांग, तिणरा घणा निकलसी सांग। महा पापी मोटकोए, करम दियो धकोए ॥ २३ ॥ चोखा पाले जे सोंस, त्यांरी पूरीजे मनरी होंस। जासी देव-लोकमेए, कोई जासी मोच मे ए ॥ २४ ॥

कई जीव ऐसे विरक्ती वैराग्य मग्न होके तीन करण तीन योगसे मनमें समता भावसे सर्वथा प्रकार चोरी करणेका त्याग करते हैं वो धन्य हैं, केई भारी गर्मी जीव त्याग करके व्रत भंग कर देते हैं वो महा पापी होके कर्म भय तोफानके धक्कें में संसार समुद्रमें डूबते हैं, इस लिये हे भव्यजनो अपणे लिये व्रत पच्चख्खाणके आराधणेसे मनके मनोरथ सिद्ध होते हैं, वो सुव्रती जीव देवलोकमें या मोक्षमें जाते हैं।

॥ इति तृतीय व्रतम् ॥

॥ अथ चतुर्थ व्रतम् ॥

दोहा—मनुष्य तणो भव पायने, जे नर पाले शील। शिव रमणी बेगा वरे, करे मुक्तिमे लील ॥१॥ साधू त्यागे सर्वथा ग्रहचारी परनार। मांठी निजर जोवेनही, तिणरा खेवा पार ॥२॥ कैयक श्रावक एहवा, आणे मन बैराग। भोग जाणे विष सारिषा, घर नारी दे त्याग ॥ ३ ॥

मनुष्य भव पाके शीलपाले याने मैथुनका त्याग करे यह श्रावकका चोथा (४) व्रत है, उसके पालने से वो जीव मोक्ष स्त्रीको जल्दी वरके सिद्धक्षत्र में ज्ञान दर्शनादि गुणों मयी परमानन्द भोगते हैं, साधूके तो

सर्व प्रकार मैथुनके त्याग होते हैं, और श्रावकके परदारा के त्याग होना आवश्यक हैं, जो जीव परस्त्रीको खोटी नजरसे नही देखै तो उसके खेवापार याने परम सुख परमानन्द पदपावैं। कैयेक श्रावक ऐसे वैराग्य भाव पूर्ण होते हैं वो भोगोंको जहर (विषको) बराबर समझकर अपणी घरकी हजारो स्त्रियोसे मैथुन सेनेके त्यागी हैं, वो जीव महा वैरागी हैं वान्छित फल पाते हैं।

॥ढाल॥

(देशी तेहिज)

चोथो व्रत तुम जाण, अबंभ तणा पचखाण। देवांगना मनुष्यणीए, त्यागे तिर्य्यञ्चणीए ॥ १ ॥ वले पोतारी नार, तेहनूं करे विचार। तजे दिन रातरीए, परणी हाथरीए ॥ २ ॥ पञ्चियादिकना नेम, नर तो पालेएम। मोहथी परिहरैए, आत्मा बश करैए ॥ ३ ॥ कोई सरव थकी दे त्याग, आणी मन वैराग। विषयें उद्धरैए, मन समता धरैए ॥ ४ ॥

॥ भावार्थ ॥

सद्गुरु कहते हैं भव्यजनों! अब्रह्म का त्याग करे वो श्रावक का चौथा व्रत है इन्द्रियों के भोगों को जहर विष के समान जाण कर पर स्त्री का त्याग करै जिसमे देवांगना का मनुष्यणी का तिर्यंचणी प्रमुख का त्याग, और घरकी स्त्री का भी विचार करै दिन रात का नियम माफिक त्याग करे, जिसमें परस्त्री प्रमुख का तो श्रावक के त्याग होना अवश्य चाहिये, आत्मा को वश करके मैथुन सेना त्यागै सोही धर्म है, कई जीव वैराग्य के भाव से विषयों में लिप्त न होके घरस्त्री और परस्त्री का त्याग मनमें समता धरके करते हैं उन्हें धन्य है।

म्हारे घर नारी सूं नेह, तिण ने किम देऊं छेह। आत्म वश नही ए कर्म घणासही ए ॥ ५ ॥ करूं दिवस तणा पचखाण, रात तणा परमाण। संतोष आदरूं ए, विषय परिहरूं ए ॥ ६ ॥ पर नारी सूं प्रेम, मैं कीधो छै नेम। सुई डोरा करीए, ऐसी विगत धरीए ॥ ७ ॥ जे सेवे परनार, ते गया जमारो हार। नरकां माही पड़े ए, ढील नहीं करैए ॥ ८ ॥

॥ भावार्थ ॥

तब गृहस्थ बोला हे मुनिराज! आपने फरमाया वो सत्य है मैं भी ऐसा ही जानता हूं परन्तु घरकी स्त्री के स्नेह राग से फंसा हुआ हूं इससे त्याग नही हो सकता आत्मा वश न ह हो सकती, इसलिये दिन का तो त्याग करता हूं और रात का प्रमाणोपेत मैथुन का त्याग है और परस्त्री से सूई डोरावत् सेने का त्याग है। परस्त्री सेवन करने वाले मनुष्य जनम हार कर नरकों में जलदी ही जाते हैं।

चौथो व्रत घणो श्रीकार, सारां व्रतांरो शिरदार। व्रतांरो नायको ए, मुक्तिरो दायको ए ॥ ९ ॥ शील व्रत छै मोटो रत्न, तिणरा करिए यत्न। ते आतम उद्धरे ए, शिव रमणी वरे ए ॥ १० ॥ ए व्रत पालो निर्दोष, त्यांने नेडी मोक्ष। तिणमे शंका नहीं ए, श्रीजिन मुख सूं कही ए ॥ ११ ॥ च्यार जातरा देव, करे ब्रह्मचारी री सेव। वले शीश नमावता ए, वादे गुण गावता ए ॥ १२ ॥ जिण चौथो व्रत दियो भांग त्यारां घणा निकलसी सांग। ते नरकां मांही पड़े ए,

घणूं रड़ वड़े ए ॥१३॥ इह लोकेफिट फिट होय, पर-लोके दुर्गति जोय। तिण जन्म बिगाड़ियो ए, मानव भव हारियो ए ॥ १४ ॥

॥ भावार्थ ॥

चौथा व्रत अत्यन्त श्रेष्ठ और सर्व व्रतों में मुख्य है और मोक्ष का दायक है, इस शीलव्रत रत्न को जत्न कर अखंड रखने से आत्मोद्धार करके मुक्ति रमणी वरते हैं, इस व्रत को शुद्ध पालने वाले के मोक्ष नजदीक है श्री जिनेन्द्रों ने अपने मुख से फरमाया है।

॥ उक्तंच ॥

देव दानव गंधव्वा, जक्ख रक्खस किन्नरा।
बंभयारी नमंसंति, दुक्कडं जे करंतिते ॥ १ ॥

॥ भावार्थ ॥

देवता दानव गन्धर्व यक्ष राक्षस किन्नर आदि ब्रह्म व्रत पालने वाले को नमस्कार करते हैं कारण ये महा कठिन काम है इससे वे पुरुष पुरुषोत्तम हैं।

॥ भावार्थ ढालका ॥

भुवनपति वानव्यन्तर जोतषी वैमानिक ये चारों प्रकार के देवता ब्रह्मचारी की सेवा भक्ति करते हैं मस्तक नमाके गुण ग्राम करते हैं, और जो चौथा व्रत का भंग करते हैं उनको पुनर्जन्म मरणादिक साग बहुत करने पड़ते हैं, नरकों के दुःख सहने पड़ते हैं, इसलोक में दुनियां उनकी गर्हा करती है, और परलोक में महादुखी होना पड़ता है।

जातिवंत कुलवंत ते आतम नित्य दमन्त, ते व्रत पालसी ए। कुल उजवालसी ए ॥ १५ ॥ नाहि जाति-वन्त कुलवन्त, वलिरसगृद्धि अत्यन्त। ते विषयरो पासियो ए, बरत विनासियो ए ॥ १६ ॥ निरलज

लज्जा रहित, वलि विषय विकार सहित। तिण व्रत कापियो ए, ते मोटो पापियो ए ॥ १७ ॥ ब्रह्म व्रतरा भांजणहार, छुगल्यांरो, जमवार। ते न्यात लजावणाए, दुरगति ना पावणा ए ॥ १८ ॥ घणा लोकांरे मांय, ऊंचे स्वर बोल्यो नहि जाय। या खामी मोटी घणीए, व्रत भांजण तणीए ॥ १९ ॥ यो मोटो कियां अकाज, लज्जावन्तने आवे लाज। निरलज लाजे नहीं ए, सत्य घणी महीए ॥ २० ॥ दूण शील भांजणरो सोय, कहवत मिटे न कोय। या मोटी मइणीए, जीवे जिहां भणी ए ॥ २१ ॥ दूण पापी कियो अकाज, अजे न आवे लाज। तोही बोले गाजतोए, निरलज नहिं लाजतो ए ॥ २२ ॥ ब्रह्म व्रत तणों करे भंग, तिणरो कदे न कीजे संग। कुकर्म माहिं भिलियोए, करम कादे कलियोए ॥ २३ ॥

॥ भावार्थ ॥

ज्यो जातिवन्त कुलवन्त होते हैं वोही अपनी आत्मा को दमन कर ब्रह्मव्रत पालते हैं, और कुलको उज्वल याने उजला करते हैं, और ज्यो जातिवन्त कुलवन्त नहीं हैं वो रसगृद्ध याने आसक्त वसीभूत होके विषय रूप पासमें पड़के ब्रह्मव्रत का विनाश करते हैं, वो निर्लज्ज विकार सेवी व्रत को काटके महा पापी होता है ब्रह्मव्रत भंग करने वाले को धिकार है, ऐसे जाति लजावने वाले जीव दुर्गति के पाहुणे हैं, उनसे बहुत लोको में ऊंचे स्वर से नहीं बोला जाता है क्योंकि यह बड़ी भारी खोट है, कोई लज्जावान होय उनको शरमाना पड़ता है, किन्तु निर्लज्ज

तो निन्दा से भी नही लजाते हैं, लेकिन इस शीलव्रत भाजने का सल्य तो उनके जीमे खटकता ही है, चाहे जितना वडा आदमी क्यों न हो मगर लोगों में कहावत तो बनी ही रहती है, ए टोणा यावत् जीवन पर्यन्त रहता है, पांच आदमियों में अगर बोले तो कहते हैं के देखो इस पापी ने भारी अकाज किया लेकिन अब भी ऊंचा होके बोलता है, इसलिये ब्रह्म व्रत को भंग नही करना तथा करने वाले का संग भी नही करना चाहिये, सग करने से उसके कर्त्तव्य सामिल होके कर्ममयी कादे मे गलित होते हैं।

जे सेवे परनार, ते गया जमारो हार, लजावे न्यातने ए, पड्या मिथ्यातमेए ॥२४॥ परनारी मा बहन समान, त्यांसूं न करै मांठो ध्यान, चित चोखो कियो ए, ब्रह्मव्रत लियो ए, ॥ २५ ॥ कोई छोड़ शरमनैं लाज, त्यांसूंई करै अकाज, ते निर्लज नहिं लाजियो ए, डाको बाजियो ए ॥२६॥ करम जोग जाय भांज, पिण कीर्तिनें आवे लाज, कोई लाजै नहीं ए, बेशरमी सही ए ॥२७॥ कोई सिधावे मम मांहिं खोटो कियो अन्याय, पछतावो अति घणो ए, खोटा कर्तव्य तणूं ए ॥२८॥ जिणरो चोथा व्रत गयो भांग, तिणरो पूरो अभाग, ते नागो निरलजोए, तिण मे नहीं मजो ए॥२९॥ ब्रह्म व्रतनी नव बाड, जे पाले निर अतिचार, अडिग सैंठो घणूंए, मन जोगां तणूं ए ॥३०॥ जिण लोप दीधी नव वाड़, तिणरा हुवे बिगाड़, खुराबी होवै घणी ए, ब्रह्म भंग तणो ए ॥३१॥ व्रत भांग सेवे परनार, ते गया

जमारो हार, फिट फिट होवे घणूं ए, कुजश तिण तणूं ए ॥३२॥

ज्यो आदमी पराई स्त्री को सेते हैं वो मनुष्य व्यवहार कर अपणी जातिको लजाते हैं, मिथ्या मयी कूपमें पडते हैं, और ज्यो परस्त्री को माता भैण के समान समझ कर खोटी नजर नहीं ताकते उनने अपणे चित्तको स्वच्छकर ब्रह्मव्रत अंगीकार किया है, कोई ऐसे निर्लज्ज होते हैं सो मा, भैण से भी नहीं चूकते, वो बाजे डाकी दुनियां में कहलाते हैं, और कई एक ऐसे भी हैं, पूर्व संचित पापसे कभी ऐसा हो भी जाय तो जन समुदाय में लज्जित होते हैं मन में पछतावा करते हैं मैंने अनर्थ किया अन्याय किया है इस वास्ते जिसके चोथे व्रतका भंग होगया उसका तो पूरा अभाग्य है, वो कपड़े सहित भी नंगा निर्लज्ज है, इसमें कुछ मजा नही है इस वास्ते ब्रह्मव्रत को नव वाड सहित पालन करै और दृढ़ होकर अडिग रहै मनको चंचल न करै उनहीं की बलिहारी है जिसने नव वाड़ को लोपदी है उसका विगाड़ बहोत है ब्रह्मव्रत के भंग करने से, जो इस व्रत का भंग करके पराई स्त्री सेवन करते हैं वो मनुष्य जन्म व्यर्थ खोके संसार में निन्दित बहुत होते हैं उनका अपयश बहुत दुनियां में होता है।

॥ ढालतेहिज ॥

चोखे चित पाले शील, ते रहे मुक्ति मे लील, राखो नित्य आसता ए, पामै सुख सास्वता ए ॥ ३३ ॥ दिन दिन चढ़ते रङ्ग, पालो व्रत अभङ्ग। मन समता धरो ए, शिव रमणी वरो ए ॥ ३४ ॥ ब्रह्मव्रत ने श्री जगदीश, ओपमा कही बत्तीस। दशमां अंग मे कही ए, शूरा पाले सही ए ॥ ३५ ॥ करणा जोग सुजाण,

ब्योरा शुद्ध पिछाण। चोखे चित्त पालज्यो ए, दूषण टालज्यो ए ॥ २६ ॥

॥ भावार्थ ॥

सतगुरु कहते है इस शीलव्रतको चोखे चित्त पालने से मोक्ष में साश्वते आत्मिक सुखों में लील विलास सदा सर्वदा पाते हैं, इसलिये इसकी आस्था प्रतीति रखके दिन २ चढ़ते प्रणामों से मनमें समता ल्याके ए अवंभव्रत को पालन करो इस व्रतको श्री जगदीश्वर प्रभुने श्री दशमां अंग में बत्तीस ओपमा दी है, इस ब्रह्मव्रत को जो शूरवीर पुरुष होते हैं सो पालते हैं और वोही शिव मयी स्त्रीको वरते हैं इस लिये कहना है महानुभावों करण जोग ब्योरा शुद्ध विचारके लिया हुआ व्रत को अच्छी तरह निर्दोष पालन करो कोई प्रकार से किसी भी हालत में दोष मत लगावो।

अथ पंचमव्रत

॥ दोहा ॥

पांचमे व्रत त्यागे परिग्रह, ते परिग्रहो मूरछा जाण। तिणसूं निरन्तर जीवरे, पाप लागे छे आण ॥ १ ॥ ए मोटो पाप छे परिग्रहो, तिणथी गोता खाय। सांसो हुवे तो देखल्यो, तीन मनोरथ मांय ॥ २ ॥ ए अनर्थ ज्ञानी भाषियो, नरक ले जावे ताण। यती मार्गनूं भंजणो, निषिध कियो- इम जाण ॥ ३ ॥ खेत्तु वत्थु हिरण सुवर्ण तणो, धन धान वलि जाण। द्विपद नें चोपद तणो, कुम्भी धातु तणूं प्रमाण ॥ ४ ॥ खेत

उघाड़ी भूमिका, वत्थु हाट हवेली जाण। रूपा नें सोना तणूं करै शक्ति सारु पच्चखाण ॥ ५ ॥ सचित अचित मिश्र द्रव्य छै, यां सगलांरो करै प्रमाण। मूरछा ते अभिन्तर परिग्रहो, तिणसूं पाप लागै छै आण ॥ ७ ॥ बारला परिग्रहो नव जातिरो, ममता करि ग्रह्यो छै ताण। तिणसूं यानें परिग्रह कह्यो, तिणथी पाप लागै छै आण ॥ ८ ॥

॥ भावार्थ ॥

सतगुरू कहते है पञ्चम् व्रत में श्रावक परिग्रह को मर्याद करै, सचित अचित और मिश्र इन तीनूं जाति के द्रव्य पर मुरछा है सोही परिग्रह है जिसमें जीवके निरन्तर पाप लगता है, परिग्रह रखना ये मोटा पाप है इसमें चतुर्गति संसार मयी समुद्र में जीव अनादि कालसे गोता खा रहा है, श्रावकों के तीन मनोर्थ में परिग्रह को महा अनर्थ का मूल तथा अत्यन्त दुःखदाई कहा है, परिग्रह में लिप्त रहने वाला जीव नरक में जाते हैं, तथा यती मार्ग का ध्वंस करने वाला है, इस लिये परिग्रह की निषेधना ज्ञानियोंने करी है, सो परिग्रह नव प्रकारका है-खेत १ याने ऊघाडी भूमि, वत्थु २ याने ढकी भूमि मकान वगैरह, हिरण ३ याने चांदी आदि वस्तु, सुवर्ण ४ याने सोना, धन ५ याने रोकड रुपया आदि, धान ६ याने अनाज, कुम्भी धातु ७ याने तांवा पीतल कांसी लोहा आदि, द्विपद ८ याने दास दासी आदि. चौपद ९ याने गाय भैंस घोड़ा हाथी आदि, ये नव प्रकार का परिग्रह है सो वार्ज परिग्रह है और इनपर मूरछा रखवे सो अभिन्तर परिग्रह है, वार्ज अभिन्तर परिग्रह से जीव के पाप लगता है इस लिये श्रावक यथा शक्ति इनकी मर्याद करिके त्याग करें सो श्रावक का पञ्चम व्रत है, आगार रक्खा वो अव्रत है।

॥ ढाल देशी तेहिज ॥

परिग्रहनूं परिहार, श्रावक करे विचार, समता उर धरै ए, नव भेदे करै ए ॥१॥ खेतु वथु है एह. सोनो रूपो तेह, धन धान द्विपदा ए, कुम्भी धातु चौपदा ए, ॥२॥ ए नव विधि संख्या थाय, त्यांरी वंच्छा देवै मिटाय, तृष्णा परिहरै ए, मन समता धरै ए ॥३॥ ममता बुरी बलाय चिहूं गति मे भटकाय; घणो रड़ बड़ै ए, नहीं जक पड़ै ए ॥ ४ ॥ मनसूं करो विचार, ए नरक तणूं दातार, एहनें टालवो ए, व्रतनें पालवो ए ॥५॥ नव जातिरो परिग्रह ताहि, विचार करो मनमांहि, मूरछा परि हरो ए, मार्ग नहीं मुक्तरो ए ॥६॥ ए मोटो प्रतिबंध पाश, करै बोध बीजरो नाश, मार्ग छै कुगतिरो ए, नहीं छै मुक्तिरो ए ॥७॥ परिग्रह छै मोटो फंद, कर्म तणूं छै बध, नरक ले जावै सही ए, तिहां मार घणी कही ए ॥८॥ परिग्रह महा बिकराल, मोटो छै माया जाल, तिण में खूतां सही ए, धर्म पावै नहीं ए ॥९॥ कनक कामणी दोय त्यां सेयां दुर्गति होय, फन्द छै मोटको ए, त्यांसूं खावै धक्को ए ॥१०॥ कनक कामणी दोय पैल्लानैं पकड़ावै कोय, तिण फन्द मे नाख्यो सही ए, निकल सकै नहीं ए ॥११॥ परिग्रह दीधां कहै धर्म, ते भूला

अज्ञानी भर्म, कर्म घणा सही ए, समझ पड़े नहीं ए ॥१२॥ इण परिग्रह तणा दलाल, त्यां में पिण होसी हवाल, दुःख नरकां तणा ए, सहसी अति घणा ए ॥१३॥ ए राख्यां लागें छे कर्म रखायां पिण नहीं धर्म, तीन करण मोरखा ए, कीज्यो पारखा ए ॥१४॥ ए परिग्रहनां दातार त्यांरा सावद्य जोग व्यापार, मार्ग नहीं मोखरो ए, कांटो इण लोकरो ए ॥१५॥

॥ भावार्थ ॥

सत्गुरू कहते हैं हे भव्य जनों! खेतु वत्थु आदि ए नवू-ही जाति का परिग्रह महा दुःखदाई है बोध बीजका नाश करिके करन दु खोंको देनेवाला है इसमे ज्यादह मोटा प्रतिबंध पाश कोई नहीं है इसकी अभिलाषा से ही अशुभ कर्मका बंध होता है तो परिग्रह रखने से या रखावने से तो महा पाप लगता है इसलिये इसकी ममता मत करो ये बड़ा माया जाल फन्द है इसमें लिप्त रहने से धर्म नहीं किया जाता है कनक और कामनी ए दोनों ही लेनेसे और लेवाने से दुर्गति जाते हैं परन्तु कितनेक अविवेकी जन परिग्रह देनेमें धर्म समझते हैं सो उनकी भूल है अज्ञानवश भ्रममें पड़के पंचमा आस्रवद्वार जो परिग्रह है उसे लेने लेवाने में जिन कथित धर्म प्ररूपते हैं, किन्तु यह नहीं विचारते कि परिग्रह रखना सो आस्रव द्वार है जिससे अशुभ कर्म लगते हैं तो दूसरेको देके रखाने और अनु-मोदने में धर्म कहांसे होगा रखना सो पहिला करण है रखाना वो दूसरा करण है और रखते हुए को भला समझना वो तीसरा करण है यदि पहिला करण में पाप है तो दूसरा और तीसरा करण में धर्म कैसे हो सक्ता है, इस लिये बुद्धिवान जनोंको करण जोग की पहिचान करके यथा शक्ति परिग्रहका त्याग करना चाहिये आगार रक्खा सो

अव्रत सेना हैं और उसमें से किसी दूसरे को दिया सो अव्रत सेवाना हैं सावद्य जोग व्यापार हैं देना देवाना आदि यह सब संसार का मार्ग हैं परन्तु मुक्ति का मार्ग कदापि नही है।

॥ढालतेहिज॥

असणादिक च्यारूं आहार, श्रावकरे परिग्रह मझार, ते खावे खवावे सहीए, तिणमे धर्म नहीं ए ॥ १६ श्रावक ते मांहों मांहि, देवे लेवे छे ताहि, ते सघलोही परिग्रहो ए, इणमें शंका मत धरोए ॥१७॥ सचित अचित मिश्र द्रव्य, तिण में पागे पाछे सर्व, ए सघलो परिगरो ए, ते ममता मांहि खरोए ॥१८॥ सचित अचित सघला ही ताहि, ग्रहस्थरे परिग्रह मांहि, कह्यो उववाई उपांग में ए, वलि सुयगडाअंगमें ए ॥१९॥ त्यांरो श्रावक कियो प्रमाण, त्याग्यो ते व्रत पिछाण, बाकी अव्रत में राखियो ए सूतके साखियो ए ॥२०॥ परिग्रह दियो धर्म हेत, तिणरी आज्ञा देत कहि कहिने दिरावताए, एहवो धर्म करावता ए ॥२२॥ धनथी धर्म न थाय, तीन कालरे मांय, सांचो करि जाणिजोए, शंका मत आणिजो ए ॥२३॥ इण परिग्रह मांहि रक्त, त्यांनें आवे नहीं सम्यक्त, मूरछा तिणमें सहीए, समझ पड़े नहीं ए ॥२४॥ ज्यांरे परिग्रहासूं परतीत, तेतो होसी घणा फजीत, नरकां जावसीए, जोखां खावसीए ॥२५॥ इणथी बधे संसार,

जावै नरक निगोद मझार, घणो रडवडेए, जका नहीं पड़ैए ॥२६॥ सचित अचित द्रव्य ताहि, ग्रहस्थरे अव्रत मांहि, ज्यांरो त्याग कियो नहीं ए, त्यांरो पाप लागे सही ए ॥ २७ ॥ तीन करणा लागे पाप, तिणसूं दुःख भोगवै आप, त्यांनें त्याग्यां व्रत होसीए, जब होसी खुशीए, ॥२८॥ करण जोग वालीजे जाण, कीजे शुद्ध पचक्खाण, चोखेचित पालजीए, दूषण टालजीए ॥२९॥

॥ इति पञ्चम् व्रत ढाल ॥

॥ भावार्थ ॥

आहार पानी आदि च्यारूं प्रकार के आहार श्रावक के पास है सो परिग्रह में है उन्हें स्वयं खावे या खुवावे और भला जाने जिससे धर्म नहीं है तथा सचित अचित मिश्र द्रव्य जो ग्रहस्थी के पास है वो भी परिग्रहमें ही है मतलब जो जो आगार रक्खा है सो अव्रतमें है उववाई और सुयगड़ा अंग सूत्र मे खुलासा कहा है त्याग किया सो व्रत और जिस द्रव्य के त्याग नहीं किया सो अव्रत है, धर्म हेतु परिग्रह दिया दिवायां और देते हुए को अच्छा समझा सो आस्रव है जिससे पाप कर्म उपार्जन होता है क्योंके धन तो अनर्थ का ही मूल है धनसे तो धर्म होय तो फिर धन के त्याग क्यों करै, जितना वन सके उतना ही धनोपार्जन करे क्योंके जितना ज्यादह धन होगा उतनाहीं देके धर्म करेगा तो फिर धनवान तो विना तप संयम् किये ही धनके जरियेसे सीधे मोक्षमें चले जांयगे और निर्धन कदापि नही मोक्ष जायगा किन्तु नहीं २ तीन कालमें भी धनसे धर्म नहीं होता है परिग्रह के तो त्याग करने करावने और अनुमोदन में हीं धर्म है, परिग्रह में रक्त रहने वालेको सम्यकका लाभ नहीं होता है और सम्यक्त का अभाव मे मोक्ष कदापि नहीं जा सक्ता है, परिग्रह में तो संसार बधना

ही है तथा पाप कर्मोपार्जन करिके नरक निगोदादिमें जाके अनन्त दुःखोंके भोगी होता है ज्ञानी देवोंनें ऐसा ही शास्त्रों में कहा है इस लिये सतगुरू कहते हैं हे भव्यजनों! इस परिग्रह को महा दुःखदाई जान के करण जोगां से यथाशक्ति त्याग करो और अपने लिये हुए व्रतको अखंड पालन करो।

॥ अथ षष्टम् दिशि मर्याद व्रत ॥

॥ दोहा ॥

पांच अणू व्रत धारता, मोटो बांधी पाल। छोटारी अव्रत रही, ते पाप आवे दगचाल ॥१॥ तिण अव्रतनें मेटवा भणी, पहिलो गुणव्रत देख। दिशिमर्यादा मांडनें टाले पाप विशेष ॥२॥ मांहिली अव्रत मेटवा, दूजो गुण व्रतधार। द्रव्यादिक त्यागन करै, भोगादिक परिहार ॥३॥ जे द्रव्यादिक राखिया, जेहनी अव्रत जाण। अर्थ दण्ड छूटे नहीं, अनर्थ दण्ड पचक्खाण ॥४॥ छट्टो व्रत श्रावक तणूं करै दिशि तणूं प्रमाण। हिंसादिक त्या छज्ज दिशातणी, मनमें समता आंण ॥५॥

॥ भावार्थ ॥

उपरोक्त पांच अणू व्रत जोश्रावक अङ्गीकार किये हैं जिसमें बोहतसी अव्रत स्थूल पणें मेटदी है इन उपरान्त जो अव्रत रही है जिसमें पाप मयो पानी दगचाल आ रहा है इसलिये तीन गुन व्रत याने पञ्च अणू व्रतों को गुनदायक हैं इसलिये उनका वर्णन करते है, प्रथम गुनव्रत दिशि गमनका मर्याद, दूसरा गुनव्रत उपभोग परिभोगकी मर्याद, और तीसरा गुणव्रत अनर्थ दण्डका त्याग है, जिसमे पहिला गुणव्रत पूर्वादिदिशि मर्याद कहते हैं अर्थात् ऊंची नीची आदि दशों दिशाकी

मर्याद करके उपरांत हिन्सादि सावद्य कार्य करने का मन में समता लाके त्याग करें सो श्रावकका छट्ठा व्रत है,

॥ ढाल ॥,

डूणपुर कम्बल कोई न लेसी । फिर चाल्या पाछा परदेशी ॥एदेशी॥ ऊंची नीची दिशि कोस वे च्यार । तिण बाहिर सावद्य परिहार । तिछी दिशि पांचसय प्रमाण । इण विधि दिशितणों पचखाण ॥१॥ पृथिवी यादिक जीव न मारे, छोटाई झूंठतणूं परिहार । चोरी न करे मैथुन टाले । धनसूं ममता पाछो वाले ॥२॥ मांहि बैठा बाहिरलो लेवो देवो । तिणरा त्याग करे स्वमवो । बाहिरली वस्तु मांहि मंगावे नाहीं । मांहिली वस्तु बाहिर दे नाही ॥ ३ ॥ जघन्यतो एक आस्रव त्यागै कोई । उत्कृष्टा आस्रव त्यागै पांचूंई । एक करण तीन जोगसूं जाण । बारला आस्रवरा करे पचखाण ॥४॥ कोई दोय करण तीन जोगसे ताई । त्यागकरी अव्रत दे मिटाई । कोई तीन करण तीन जोगसूं जाण । पांचूं आस्रवरा करे पचखाण ॥५॥ बारला आस्रवनां कीधा त्याग । अव्रत छोड़ी छे आणि वैराग । क्षेत्र थकी सर्व क्षेत्रसें जाण ॥ काल थकी जावजीव पचखाण ॥६॥ कोई देवादिक तिणने नाखें बारे । तो पिण नही सेवे आस्रवद्वार । कोई

कष्ट पड़्यां राखेके आगार। पोतारी कचाई जाण तिंवारे ॥७॥ कोई मंत्री देवादिकनें बुलावे। तिण आगे आपरो काम करावे। ते पिण छट्टो वृत लियो तिणवार। इतनूं पहिलां राख्यो आग्यार ॥ ८ ॥ इत्यादि राखे आगार अनेक। आगार बिना करै नही एक। आगार राख्यां अव्रत पाप लागे। बिन आगार कियां वृत भागे ॥६॥ छट्टा बृतरो वहु विस्तारो। ते कहितां नही आवै पारो। ये संक्षेप कह्यो विस्तार। बुद्धिवन्त जाण लेसी अनुसार ॥१०॥ छट्टे वृत एहवा पचखाण। मांहि घणां द्रव्यादिक जाण। तेहनी अबृत टालण काज। सातमूं वृत कह्यो जिन राज ॥११॥ इति ॥

॥ भावार्थ ॥

छटा व्रत में श्रावक दशों दिशिका प्रमाण करें सो कहते हैं। ऊंची नीची दिशिका त्याग तो यथाशक्ति दो च्यार कोसादिक उपरन्त जाने का त्याग करैं, और तिरछी दिशा अर्थात् पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण तथा विदिशा का पांचसह या कम ज्यादह कोस यथाशक्ति रखके उपरान्त जाणे का त्याग करैं, कदा प्रमाण उपरान्त जाणे को काम पड़जाय तो वहां पृथिव्यादि षटकायों को मारने का छोटी बड़ी झूंठ बोलने का चोरी करने का मैथुन सेनेका और परिग्रह रखने का त्याग है, जो दिशि मैं जाने आने का आगार रक्खा है उस जगह भी बाहर की वस्तु मांहि नही मंगावें और माहि की वस्तु बाहर न भेजें यदि आगार रक्खें तो उसका प्रमाण करें यथाशक्ति, जघन्य एक आस्रव द्वार सेने का उत्कृष्ट पाचूं ही आस्रव द्वार सेने का त्याग करे, कितनेक

श्रावक ऐसे होते हैं सो एक करण तीन जोग से त्याग करते हैं कित-नेंक दोय करण तीन जोग से तथा दिशिका प्रमाण किया उसके बाहिर से वस्तु मंगाणे का वा उसके उपरान्त जाके आस्रव द्वार सेने का त्याग किया है उन्होंने वैराग्य से अव्रत छोडी है, ए त्याग क्षेत्र थकी सर्व क्षेत्र में कालथकी यावत जीवन पर्यन्त हैं अर्थात् छट्टा व्रत के त्याग किञ्चित काल के नहीं होसक्ते हैं, कदा ऐसे त्यागवाले को कोई देव-तादि बाहिर नांख दे तो फिर वहां पंच आस्रवद्वार नहीं सेना क्योंके उसने त्याग किया है, तथा किसीनें कष्ट पडणे से आगार रख लिया है या अपने मंत्री देवता को बुलाके अनेक काम करते कराते हैं तो ओ आगार पहिले रख लेना चाहिये अर्थात् त्याग करते समय जो आगार रक्खा है सो अपनी कचाई है जिसमें अव्रत का पाप लगता है परन्तु त्याग का भंग नहीं होता, इसलिये जो आगार नहीं रक्खा वो नही करें, और श्रावक अपना छट्टा व्रत का पालन निर्दोष करे जिससे यह लोक परलोक में सुखो हो, इस छट्टा व्रतके बहोत विस्तार हैं यहां सक्षेप मात्र कहा है इसमें बुद्धिवन्त विचार लें ।

॥ इति छट्ठा व्रत सम्पूर्णम् ॥

॥ अथ सातमां व्रत प्रारम्भ ॥

॥ दोहा ॥

सातमूं व्रत श्रावक तणूं, तिणमे उपभोग परि-भोगनां त्याग । गमती वस्तु त्यागै तेहनें, आवै छे बैराग ॥१॥ भोग आवै एक बारमें ते कहिए उपभोग । बारंबार भोग आवैं जीवनें, तिणनें कह्यो छे परिभोग ॥ ॥२॥ उपभोग परिभोगनो, अव्रत कही भगवान । त्यांरो

त्याग करै सतगुरु कने, ते सातमूं व्रत प्रधान ॥३॥
उपभोग परिभोग काम छे, ते भोग महा दुःख खान।
किम्पाक फलनौं दीधी ओपमा, भगवन्त श्री वर्द्धमान ॥४॥

॥ भावार्थ ॥

जो छट्ठाव्रतमें आगार रख्खा उसकी अव्रत मेटणे के लिये सातमां व्रत कहते हैं। सातमां व्रत में श्रावक उपभोग परिभोग के त्याग यथाशक्ति करें, जो वस्तु एक वक्त भोगने में काम आवै अर्थात् आहार पानी आदि जिसे उपभोग कहते हैं और जो वारंवार भोगने में आवें जैसे वस्त्र जेवर आदि उसे परिभोग कहते हैं, इन उपभोग परिभोगों को भगवन्तों नें किम्पाक फल समान कहा है सो भोगते समय अच्छे लगते हैं और पीछे महा दुःखों की खान हैं, इसलिये जितना जितना आगार रक्खें वो अव्रत हैं जिससे पाप कर्मोंपार्जन होते हैं आगार उपरान्त त्याग सतगुरु के पास किया वो सातमां व्रत है, उपभोगों परिभोगों के वहोत भेद हैं परन्तु इहां छव्वीस बोल करके वताते हैं।

॥ ढाल ॥

दुवापुर कम्बल कोई न लेसी फिर चाल्या पाछा परदेशी ॥ एदेशी ॥ अंगोछा १ दांतण २ फल ३ अभिङ्गन ४। उबटण पीठी ५ ने मज्जन ६। वस्त्र ७ विलेपन ८ पुष्प ९ आभरण १०। धूपखेवण ११ पीवण १२ ने भख्खन १३ ॥ १ ॥ उदन १४ सूप १५ विगय १६ साग १७ विमास। मद्धूर १८ जीमण १९। पाणी २० मुख वास २१। वाहन २२। सयन २३। पन्नी २४।

सचित २५ । द्रव्य २६ । संख्या करित्यागे एक चित्त ॥२॥ एछव्वीस बोलतणूं प्रमाण । धन्य त्यागी ते समता आण ॥ नाम लेई विवरो करलीजे । करण जोग घाली व्रत कीजे ॥ ३ ॥ ए छाड्स बोल भोगवियां संताप । भोगायां पिण लागै छे पाप ॥ अनुमोदियां धर्म किहां थी होय । तीनूं ही करण सरिषा जोय ॥ ४ ॥ मूर्ख रे दिल बात न बैसै । न्याय छोड़ि झगड़ा में पैसै ॥ सुगुरू छांडी कुगुरू से परिचा । भारी हुवे करै ऊंधी चरचा ॥५॥ व्रत अव्रत कहि जिन न्यारो । समझै नहीं तिणरे कर्म भारी ॥ मूढ मती नव तत्त्व न जाणै । लीधी टेक छोडे. नहीं ताणै ॥ ६ ॥ छव्वीस बोल तणूं आगार । तेतो अव्रत, आस्रव द्वार ॥ त्यांमे केई उप-भोग परिभोग । त्यांनें भोगवै ते तो सावद्य जोग ॥७॥ त्यांरो त्याग करै मन समता आण । शक्ति सारू करै पच्चखाण ॥ एक करण तीन जोगां से त्यागे । जब पोते भोगणरो पाप न लागै ॥८॥ दोय करण तीन जोगांसे पच्चखाण । तिण छः भांगारो पाप टाल्यो जाण ॥ तेतो पोते पिण भोगवै नही कांय । दूजा नें पिण भोगावे नही ताय ॥६॥ तीन करन तीन जोगां से त्यागे । तिणनें नव हीं भांगारो पाप न लागै । भोगवै नही भोगावे नाहीं । भोगवणा वाला नें सरावे नहीं ताही

॥१०॥ जे जे सेरी छूटी रही त्हाई। तिण से पाप कर्म लागी छे आई॥ जे सेरी रुकी संवर द्वार। तिणसि पाप न लागी लगार॥११॥ छूटी सेरी मे श्रावक खावै खुवावै। खाताने पिण छूटी सेरी में सरावै॥ रुकी सेरी में खावै खुवावै नांही। अनुमोदना पिण न करे काहीं ॥१२॥ श्रावकनें मांहो मांहि छकाय खुवावै बलि छकाय मारीनें जीमावै॥ ए अव्रत सावद्य जोग व्यापार। तिण मांहि धर्म नही छे लिगार ॥१३॥ श्रावक ने मांहो मांहि छकाय खुवावै बलि छकाय मारी ने जिमावै॥ तिण मांहि धर्म मिथ्यात्वी जाणैं। कर्म तणे वश ऊंधी ताणैं ॥१४॥ व्रत आंश्री श्रावकनें कह्यो छे धर्मी। अव्रत आंश्री कह्यो अधर्मी॥ तिणसूं श्रावक नें धर्माधर्मी जाणो। पन्नवणा भगवती से जोय पिछाणो ॥१५॥ श्रावक रो खाणो पाणूं नें गहणूं। मांहो मांहि लेणूं नें देणूं॥ ए तीनूं ही करण अव्रत में चाल्या। उववाई सुयगडा अंग मे चाल्या ॥१५॥ शब्द रूप रस गंध स्पर्श। राख्या छे तिणरी लग रही आशा॥ एह ही उपभोग परिभोग। तिणरा मिलै छै विधि संयोग ॥१७॥ राख्या छे तिणरी अव्रत जाणो। तिणरो समय समय पाप लागे छे आणो॥ त्यांनें त्याग्यां होसी

संबर सुखदाय। तिणसे अव्रतरो पाप मिटजाय ॥१८॥ उपभोग परिभोग भोगवै छै जाणि। तिणसूं पाप लागै छै आणि॥ भोगायां सें दूजै करण पाप। तिणसूं होसी बहोत संताप ॥१९॥ अनुमोदै तेसरावै आण। तिणसें पिण पाप लागै छै आण॥ श्रावकरा उपभोग परिभोग। ए तीनूं करणा छै सावद्य जोग ॥२०॥

॥ भावार्थ ॥

सातमां व्रत में छव्वीस बोलोंकी मर्यादा करिके उपभोग परिभोग के त्याग करे वो व्रत हैं आगार रक्खा सो अव्रत हैं, सो छव्वीस बोल कहते हैं। उलणिया विहं अर्थात् अंगोछादिकीं विधि १ दंतण विहं अर्थात् दंत पखालणे की २, फल विहं अर्थात् फल आम्र दाड़िम केला आदिकी विधि ३, अभिगण विहं अर्थात् मर्द्दन तेल मालिस विधि, ४, उवट्टण विहं अर्थात् उवट्टणा पीठी आदिकी विधि ५ मंजन विहं अर्थात् स्नान विधि ६ वत्थ विहं अर्थात् वस्त्रकी विधि ७, विलेपन विहं अर्थात् चन्दनादिका विलेपन विधि ८, पुप्फ विहं अर्थात् पुष्पकी विधि ९, आभरण विहं अर्थात् आभूषण गहणां जेवर आदि की विधि १०, धूप विहं अर्थात् धूप अगरादि खेवणें की विधि ११, पेज विहं अर्थात् धूप आदि पीवणें की विधि १२, भक्खन विहं अर्थात् खाणें की विधि १३, उद्दन विहं अर्थात् चांवल आदि धानकी विधि १४, सूप विहं अर्थात् दाल की विधि १५, विगय विहं अर्थात् घृत गुड आदि पट विगय की विधि १६, साग विहं अर्थात् साग तरकारी की विधि १७, मऊर विहं अर्थात् मधुर सेलडी आदि का फल मेवादि की विधि १८, जम्मण विहं अर्थात् जीमणे की विधि १९, पाणी विहं अर्थात् पानी उदक की विधि २०, मुखवास विहं अर्थात् लवंग सुपारी एलायची आदि की विधि २१, वाहण विहं अर्थात् गाडी बग्गी आदि सवारी की विधि २२,

सयण विहं अर्थात् पाट बाजोट कुरसी मेज विछावणा आदि की विधि २३, पन्नो विहं अर्थात् पगरखी आदि को विधि २४, सचित विहं अर्थात् सचित ते जीव सहित पृथिव्यादि की विधि २५, द्व्व विह अर्थात् द्रव्य तें अनेक प्रकार से खाणें पीणें को सर्व नाम की वस्तुवों की विधि २६, उपरोक्त छव्वीस बोलों को समता त्यके त्यागे उन्हें धन्य हैं, प्रमाण रखके मर्याद उपरान्त विधि सहित करण जोग करिके देशत' त्यागन करे वो श्रावक का सातमां व्रत है, तथा यह छव्वीस बोलों का त्याग न करे अथवा जितना जितना आधार रक्खा हो वो अव्रत आस्रव द्वार है जिससे पाप कर्म लगते हैं आप भोगें सो पाप दूसरे को भोगावे जिस में भी पाप है क्योंके वो दूसरा करण है और भोगते हुए को भला जानें वो तीसरा करण हैं उसमें भी पाप कर्मोपार्जन होते हैं, परन्तु मुर्ख मानव के दिलमें ए वात एकाएक जचना महा मुश्किल है वो लोग न्यायकी तरफ दृष्टि न देकर उलटे लड़ने लग जाते हैं इसका कारण सुगुरुओं को छोड़के कुगुरुओंका परिचय है, किन्तु न्यायाश्रयी और सम्यदृष्टि जीव तो अच्छी तरह से जानते हैं कि श्रावक के जिस कार्य में पहिले करण पाप हैं तो दूसरे और तीसरे करण में धम कदापि नही हो सकता है, श्रावक का खाना पीना पहरना ओढ़ना आदि सब कार्य अव्रत में हैं ऐसा पाठ खुलासा श्री उववाई तथा सुयगडांग सूत्र में है श्रावक को व्रत आश्रयी धर्मी और अव्रत आश्रयी अधर्मी श्री पन्नवणा भगवती सूत्र में कहा है इसही लिये श्रावक को धर्मी अधर्मी तथा व्रताव्रती कहा है, विवेकी जीवों को विचारणा चाहिये कि जो जो शब्द रूप गंध स्पर्श उपभोग परिभोग आगार रक्खा है जिन्हों की आशा वान्छा लाग रही है उनका संयोग वियोग करता है वो प्रथम करण से अव्रतास्रव है उससे पाप लगता है दूसरे को भोगता है जिससे द्वितीय करण और भोगने वाले की अनुमोदना करता है जिससे पाप लगता है। अर्थात् भोग उपभोग के तीनूं करण सावद्य जोग है इनका त्याग करने से श्रावक के व्रत संवर होता है।

॥ढालतेहिज॥

जघन्य मज्झम उत्कृष्टा जान। श्रावक गुण रतनां री खान॥ त्यांरो खाणूं पीणूं अव्रत मे जाणो। तिण ने रूडो रीत पिछाणो॥ २१॥ जघन्य श्रावकरे अव्रत घणेरी। उत्कृष्टा श्रावकरे अव्रत थोड़ेरी॥ पिण ते अव्रत आस्रव पापरो नालो। तिणसे पाप आवै दगचालो॥ २२॥ श्रावक तप करे आणि हुलास उपवास वेलादिक करे छमास॥ सावद्य जोग रूंध्यां संवर हुवै रूड़ो। तपसे कर्म करे चकचूरो॥ २३॥ तप पूरो हुवां पछे अव्रत आगार। खावो पीवो ते सावद्य जोग व्यापार॥ तिणसे कर्म लागे छे आय। ते पाप होसी जीवने दुःखदाय॥ २४॥ पारणूं करे ते पहिले करण जाणो। करावे ते दूजे करण पिछाणो॥ सरावण वालो छे तीजे करणो। यां तीनांरो बुद्धिवन्त करसी निरणो॥ २५॥ पहिले करण तो पाप बंधावे। तो दूजे करण धर्म किहां थी थावे॥ तीजे करण धर्म नहीं छे लिगार। यां तीनांरा सावद्य जोग व्यापार॥ २६॥ सावद्य जोगां सै लागै छे पाप। तिणसूं जिन आज्ञा न दे आप॥ जो श्रावक ने जिमायां धर्म होता। तो अरिहन्त भगवन्त आज्ञा देता॥ २७॥ कोई कहे श्रावक ने जिमायां धर्म। ते भूल

गया अज्ञानी भ्रम ॥ पोते पिण जीम्यां लागै पाप कर्म। तो औरां ने जिमायां किम होसी धर्म ॥ २८ ॥ कोई कहै लाडू खवायां धर्म। वो तप करै तिणसे म्हांरा कटसी कर्म ॥ तिणसे म्हे औरांने लाडू खवावां। लाडूवां साटै म्हे उपवास करावां ॥ २९ ॥ पाछै तो वो करसी सो उणने होय। पिण लाडू खवायां धर्म नहीं कोय ॥ लाडू खवायां तो एकान्ति पाप। श्रीजिन मुखसे भाख्यो छै आप ॥ ३० ॥ श्रावक ने लाडूड़ा खवायां धर्म जो होय। तो एहवो धर्म करै हरकोय ॥ बड़ा बड़ा श्रावक हुवा धनवंत। इम लाडू खवाइने धर्म करंत ॥ ३१ ॥ बड़ा बड़ा सेनापति ताहि। त्यारै हुंती घणी धर्मरी चाहि ॥ खवायां धर्म हुवै तो आघो नाहीं काढ़ता। लाडू खवाई काम सिरारे चाढता ॥ ३२ ॥ जो श्रावक ने लाडू खवायां धर्म। खवावण वाला रै कट जाय कर्म ॥ तो चक्रिवर्त वासुदेव बलदेव। यो तो धर्म करता स्वमेव ॥ ३३ ॥ लाडू खवायां होवै जो धर्म। श्रावक ने लाडू खुवायां कट जाय कर्म ॥ तो च्यारूंही जातिरा देव स्वमेव। एहवो धर्म करै तत खेव ॥ ३४ ॥ जो एहवा धर्म थी शिव सुख होय। तो देवता आघो न काढता कोय ॥ एहवो धर्म करी पूरता मन खांत। देव भवथी पाधरा

माच पोहचंत ॥ ३५ ॥ पिण लाडूडा खवायां तो धर्म छै नाहिं । खाणों खवावणों अव्रत मांहि । इण मांहि धर्म श्रद्धै ते भोला । त्यांरै मोह कर्म नां छैरे झकोला ॥ २६ ॥ लाडू खवायां धर्म नहीं छै भाई । यातो उघाड़ो दीसै चिकलाई योतो लोलपणों जिभ्यारो स्वाद । पिण भारी कर्मां मांडो ए वाद ॥ ३७ ॥ खाणूं खवावणूं त्यागै सोय । जब सातमूं व्रत श्रावक रे होय । जब रुकसी ते आवता कर्म । तेहिज ऊजलो संबर धर्म ॥ ३८ ॥ तीनूं हीं करण जुवा २ कीजे । त्याग अनें आगार ओलखीजे । अव्रत मे पाप जाणि छोडीजे । व्रत में धर्म जाणी व्रत लीजे ॥ ३९ ॥ मानव भवरो लाहोलीजे । दान सुपात्रने निश्चय दीजे धर्म नूं कारज वेगो कीजे । सतपुरुष सेयां वाञ्छित लीजे ॥ ४० ॥ इति ।

॥ भावार्थ ॥

जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट ए तीन प्राकार के श्रावक कहे हैं वे श्रावक व्रतमयी रत्नों की खान है, जितने २ त्याग है वो व्रत अमूल्य रत्तन है तथा जो जो आगार रक्खा है और खाते पीते हैं वो सब अव्रत हैं वो रत्न नहीं हैं वो तो निर्मूल्य काच है अपणे पास रखणें से भी काच और निरधन पणाँ है, दूसरे को देने से भी काच और निरधन पणां ही है, जो व्रतमयी रत्न सो अपणें पास में भी रत्न है तथा जिससे सर्व कार्य सिद्ध होते हैं और दूसरे को व्रत कराणे से उसको भी अमूल्य रतन देना है जिससे उसके भी कार्य सिद्ध होते हैं अर्थात् जो

जो त्याग हैं वो धर्म है जो जघन्य श्रावक है उसके अव्रत वहोत हैं उत्कृष्ट श्रावक है उसके अव्रत थोड़ी है अव्रत है सो आस्त्रव द्वार है याने परनाला है जिसमें होके पापमयी पानी आता है उसको बंध करने से चारित्रमयी निज गुणोत्पन होता है, उपवास बेला तेला षट्मास आदि तप करने से खाना पीनादि सावद्य जोग रूकते है वो व्रत सवर है तथा भूख तृषादि समपरिमाणामों से सहन करता है जिससे अशुभ कर्म क्षय होता है सो निरजरा है तप पूरण हुए से जिस २ वस्तुवों का भोगोपभोग करने का आगार है वो भोगता है खाता है पीता है अनेक तरह के सावद्य जोग व्यापार करता है जिससे पाप कर्म लगते हैं वो जीवको दु:खदायी है, पारणा किया सो प्रथम करण दूसरे का पारणा कराया वो दूसरा करण है ऐसे ही अनुमोदना अर्थात् अच्छा जानना सो तीसरा करण है, इनका निर्णय बुद्धि-वान जन सहज में कर सकते हैं विचारणा चाहिये कि प्रथम करण में पाप है तो द्वितीय और तृतीय करण में धर्म कैसे होगा, तात्पर धारणा पारणा करणे वाला सावद्य जोग सेता है और उसकी जिन आज्ञा नहीं है अधर्म है तो धारणा या पारणा कराणे वाले को धर्म किस तरह होगा यदि खिलाने में धर्म है तो खाने मे भी धर्म है जो खाने मे धर्म नहीं है तो फिर खिलाने में भी धर्म नही है क्योंकि अधर्म कराने से धर्म कैसे होगा, इस लिये ही श्रावकको खाना खिलाना अनुमोदना इन तीनूं करणों की श्रीजिनेश्वर की तथा साधू मुनिराजों की आज्ञा नहीं हैं यदि आज्ञा होती तो अब साधू मुनिराज श्रावक के खाना खिलाना और अनुमोदने की आज्ञा क्यों नहीं देते परन्तु शुद्ध निग्रन्थ साधू तो आज्ञा नहीं दे सकते हैं और इस सावद्य कार्य को मन वचन काया करिके अच्छा भी नहीं जानते हैं, जो कोई श्रावक को जिमाने में धर्म जानते हैं वो अज्ञान हैं उनके मोह कर्म की छाक वहोत है इसलिये अनादि कालसे खाना और खिलाने को अच्छा समझ रहे हैं, समदृष्टि मनुष्य के तो खाना और खिलाने का त्याग करणे से

सातमां व्रत होता है, इसलिये सतगुरुवों का कहना है व्रत अव्रतको यथार्थ उलखना करिके अव्रत को छोड व्रत अंगीकार करो अव्रत में अधर्म और व्रत में धर्म समझो ए मनुष्य भव पाने का लाह ल्यो कुगुरुवों को छांडकरि सुगुरुवों को सेवो और सुपात्र दान दो धर्म कार्य जल्द करो जिससे जीवका भला होगा।

॥ इति सप्तम् व्रत भावार्थ ॥

अथ पंद्रह कर्मादान

दोहा--उपभोग परि भोगनूं। सातमूं व्रत प्रधान।
तिण मांही उपदेशिया। पंद्रह कर्मादान ॥ १ ॥

॥ ढाल चाल तेहिज ॥

ईंट लोहाला सोनार ठठारा। भडभूंज्या कुम्भ कार लोहारा। ए कर्म करीने पेट भरीजे। तेह अंगालिक कर्म कहीजे ॥ १ ॥ बेचें साग भात कंदमूल। फल बीजादिक धानने तंदूल। बेचें फूलादिक सर्व बनराई। ते वण कर्म कहीजेरे भाई ॥ २ ॥ बेचें गाडादिक रथ कराई। चोकी पाट पलंग बणाई। किंवाड थंभादिक ते बेचावे। ए तीजो साडी कर्म कहावे ॥ ३ ॥ हाट हवेली भाडे थापे। रोकड नाणूं व्याजें आपे। गाडादिक भाडे दे जेह। भाडी कर्म कहिजे तेह ॥ ४ ॥ बेचें नालेरादिक फोडी। वलि आखरोट सोपारी तोडी। पत्थर फोड दले पीसे धान पांचमूं फोडी कर्मादान ॥ ५ ॥ कस्तूरी केवडा गज

दन्ता । मोती अगर पाप अनन्ता । चर्म हाड सींग जो हार । छट्ठो कर्मादान ए धार ॥ ६ ॥ सातमूं भेद मैण सल आल । बेचै लाख गुली हरिताल । कसूंबादिक रांगण पास । दोष घणो कह्यो जिन तास ॥ ७ ॥ मधु मांस मांखण ने दारू । भाखी विगय कही जिन च्यारू दूध दही घृत तेल गुड़ जाण । आठमूं ए रस बाणिज्य पिछाण ॥ ८ ॥ बेचैं ऊंट गधा बैल गाय । घोड़ा हाथी भैंस मंगाय । ऊन रूई रेशम थान बणाय । केश बाणिज्य ए नवमं थाय ॥ ९ ॥ सींगी मोरोने आफू सार । लीलो थूथो सोमल खार । हरबंसी नर बंसी विणजै । ए दशमूं विष बाणिज्य कहिजै ॥ १० ॥ तिल सरस्यूं प्रमुख पिलावे । इषू रसनां घाण करावे । जन्त पीलण इग्यारमूं कर्म । करतां बधे घणो अधर्म ॥ ११ ॥ कान फड़ावे नाक विंधावे । पापी कसिया बैल करावै । बारमूं कर्मादान निलच्छन । व्रत धारी ने लागी लंछन ॥ १२ ॥ बालै गाम नगर करि लाय । अटव्यादिक में दव दे लगाय ॥ बालै सूरडाने दव आपै । तेरमूं कर्म इसी पर व्यापै ॥ १३ ॥ चवदमूं भांजै नदी द्रह तीर । खेतमांहि आणी घालै नीर ॥ सर द्रह तलाव कूवै सोषंत । एकर्म करी जीव नरक पडन्त ॥ १४ ॥ साधु बिना सघला पोषीजे । पन्नरमूं

असंजती पोष अहिजे ॥ रोजगारले त्यां ऊपर रहवे । खाणूं पीणूं असंजती ने देवे ॥ १५ ॥ ए पन्दरह कर्मादान विस्तार । मर्याद बांधि करे परिहार ॥ ए पन्दरह कह्या सावद्य जोग व्यापार । करे आजीवका चलावण हार ॥ १६ ॥

॥ इति सप्तम् व्रतम् ॥

॥ भावार्थ ॥

उपभोग परिभोग के त्याग करै सो सातमा व्रत कह्या जिसमें पंदरह कर्मादान कहे सो कहते हैं अंगालि कम्मे १ अर्थात् अंगालिक कर्म ईंट कोला कली चूना भट्टी वगैरह में बनाना तथा सोनारका काम ठठेरेका काम भड़भूंजा का काम लोहारका काम तथा कोयला आदि अग्नि द्वारा काम करना उसे अंगालिक कर्म कहते हैं। वणकम्मे २ अर्थात् वनस्पति हरी नीलोती साग पात फल फूल का काम करना तथा वेचना। साडिकम्मे ३ अर्थात् साटी कर्म काष्ट का गाडा रथ चौकी तखते पर्यंक कपाट स्तम्भ आदि लकड़ी की अनेक वस्तुओं को बना बनाके वेचना। भाडी कम्मे ४ अर्थात् भाड़ाकर्म दुकान मकान जमीन गाडा गाडी प्रमुख को भाड़े देना तथा रोकड़ रुपयादि को व्याजू देना। फोडी कम्मे ५ अर्थात् तोड़ने फोड़ने का काम नारेल सोपारी आखरोट पत्थर आदि को तोड़ तोड़के वेचना तथा अनाज को दलना पीसना आदि। दंत वणिज्जे ६ अर्थात् दन्तादि का व्योपार—कस्तूरी केवड़ा गज दन्त मोती चमड़ा हाड़ आदि का व्यापार। लक्ख वाणिज्जे ७ अर्थात् लाख आल मोम लगुली हरिताल आदिका व्यापार। रसवाणिज्जे ८ अर्थात् घृत गुड़ तैल दूध दही तथा मदिरा मांस माखण सैत आदिका व्यापार। केश वाणिज्जे ९ अर्थात् केशोंके निमित्त ऊंट गधा गाय बैल घोडा हाथी आदि का व्यापार। विष वाणिज्जे १० अर्थात् विषका व्या-

पार-सींगी मोरा अमल आक पोस्तडोडी लीलाथूता सोमलखार हरवंसी नरवंसी आदि विषका वाणिज्य। जंत पिलणियां कम्मे ११ अर्थात् जंत्र घाणी कल मशीन आदि में तिल सरसूं प्रमुख को पीलना पिलाना तथा सांठा आदि का घाण कढवाना। निलच्छन कम्मे १२ अर्थात् कान फड़ाना नाक विंधाना तथा बलद प्रमुख को बादी करना। दवग्ग दावणिया कम्मे १३ अर्थात् ग्राम नगर अटवी आदि में अग्नि लगाना सर दह तलाव सोपणियां कम्मे १४ अर्थात् सरद्रह तलाव नदी प्रमुख को बूरना सोषंत करना या नाला मोरी को खोलनादि। असईजण पोष-णियां कम्मे १५ अर्थात् असती जन ते असंजती को पोषणे का काम साधु विना सब को पोषना तथा असंजती जीवों को पोषने के निमित्त रोजगार लेके रहना। उपरोक्त पन्द्रह कर्मादान कहे सो सर्व कर्म बंधन के कारण हैं यह श्रावक को छोड़ने योग्य हैं परन्तु आदरणे योग्य नहीं है गृहस्थ से न छोडे जाय तो इनकी मर्याद करिके उपरान्तके त्याग करै सो व्रत है आगार रक्खा सो अव्रत है जिससे पाप कर्म लगते हैं।

॥ इति सप्तम् व्रत भावार्थम् ॥

॥ अथ अष्टम् अनर्थ दंड परिहार व्रत ॥

॥ दोहा ॥

सातमूं व्रत पूरो थयो। हिव आठमानूं विस्तार
अर्थ अनर्थ ओलखवा भणी। तेहनूं सुणो विचार ॥१॥
सातव्रत आदरतां थकां। बाकी अव्रत रही छे ताय ॥
तिणसे निरन्तर जीवरै। पाप लागी छे आय ॥ २ ॥
तिण अव्रतरा दोय भेद छे। तिणमे एक अनर्थ दण्ड जाण ॥ दूजो अव्रत अर्थ दण्ड तणो। त्यासूं पाप लागे छे आण ॥३॥ अर्थ ते मतलब आपरै। सावद्य

करै विविध प्रकार ॥ अनर्थ ते मतलब विना । पाप करतां डरै न लिगार ॥४॥ पाप करै अर्थ अनर्थ कारणें । त्यांने रूडो रीत पिछाण ॥ अर्थ दंड छोडणुं दोहिलो । पिण अनर्थरा करै पचखाण ॥५॥ अनर्थ डंड तणां भेद अतिघणा । ते पुरा कह्या न जाय ॥ थोडासा प्रगट करूं । ते सुणिजो चित्त लयाय ॥६॥

॥ भावार्थ ॥

अब आठमां व्रतमें अनर्थ दण्डके परिहार करणे की विधि बताते हैं पूर्वोक्त सातव्रत आदरने जो अव्रत रही उसमें जीवके निरन्तर पाप लगते हैं जिसमें एक तो अर्थ दूसरा अनर्थ, अर्थ तो अपने मतलबके लिये और अनर्थ बिना मतलब सावद्य जोग वर्तना, ग्रहस्थसे यदि अपने मतलबके लिये पाप करनेका त्याग न हो सके तो विना मतलब पाप करनेका त्याग तो अवश्य करना चाहिये जिसमें अनर्थ दंडकी अव्रत मिटै, अनर्थ पाप अनेक तरह से होता है परन्तु यहा अलपसा वर्णन करिके कहते हैं ।

॥ ढाल चाल तेहिज ॥

पहिलो भेद कह्यो अपध्यान । तिणथी बांधै अनर्थ खान ॥ बीजो भेद प्रमादज आखै । घृतादि ठाम उघाड़ा राखै ॥ १ ॥ शस्त्र जोड करै बिस्तार । पाप उपदेश देवे विविध प्रकार ॥ ए अनर्थरा करै पचखान । सूधी पालै जिनवर आण ॥ २ ॥ अनर्थ दण्ड किम कहिजे । अर्थ दण्ड सेती उलखीजे ॥

तेहना भेद विविध प्रकार। संक्षेप मात्र करूं विस्तार॥ ३॥ माठा ध्यानरो दोय प्रकार। जे जगमे ध्यावे नरनार॥ आर्त रौद्र ध्यान ध्यावै लोग॥ पामैं विवध हर्ष ने सोग॥४॥ शब्दा-दिक इन्द्रियां नां भोग। तेहनूं वंछे संयोग वियोग॥ रोगादिक लागे अणगमता। भोग भोगवतां लागे गमता॥५॥ इणविधि जीव रचै ने विरचै। आप अर्थ कुटुम्ब ने परिचै॥ ठाकुर चाकर सगा स्नेही। बोहराने धुरया आदि देई॥६॥ जिण सुखिये सुख वेदै आप। तिण दुःखये पामैं सोग संताप॥ ते पिण टालै समता आण। अनर्थ ध्यावारा पचखाण॥७॥ रौद्र ध्यान हिन्सा जी ध्यावै। झूंठ चोरी बंदीखान दिरावै॥ अर्थ करै पिण धूजै तन्न। अनर्थ ध्यान तजै एक मन्न॥८॥ घृतादिक पिण विणज करतां। धूमादिक कारज अण सरतां। इण विधि अर्थ उघाडा राखे रहाई। तिण रा जतन करै चितल्याई॥९॥ प्रमादनै वश आलस आण। उघाड़ा राखण रा पच-खाण। घरटी ऊखल मूसल राखै। म्हारै सरै नहीं इण पाखै॥ १०॥ अनर्थ राखण रा पचखाण। एहवो व्रत करै मन जाण। अर्थे पिण राखन्ता शंकाय अनर्थ पिण नहीं राखै रहाय॥ ११॥ भाई भतीजा

चाकर पेख। त्यांने दे पापरा उपदेश। खेती वाणिज्य सोदा करो भाई। युं बैठो खासो किणगे कमाई ॥ १२ ॥ बुद्धिवन्त नर ज्ञान से देखे। कहितां लागै पाप विसेख। तो अनर्थ कुण घरमे घाले॥ तिण थी कर्मज मैला झाले॥ १३ ॥ जश कीर्ति मान बड़ाई काजै। वलि शरमा शरमी लोकांरी लाजै। वलि घर उदारणारे तांई। हिन्सादि करै ते अर्थ दण्ड मांही ॥ १४ ॥ जिण कर्तव्य कियां करै लोक भण्ड। ते कर्त्तव्य छै अनर्थ दण्ड। छ कंडी राखी ते अर्थ दण्ड मांही। त्यांरे काजै हिन्सादि करै छै ताहि ॥१५ ॥

॥ भावार्थ ॥

आत्मा दो प्रकार से दण्ड पाती है, एक तो अर्थ दूसरा अनर्थ करि के पाप लगता है जिस अनर्थ दण्ड के च्यार भेद हैं—अपध्यान १ हंस-पयाणं २ प्रमाद ३ पाप कर्मका उपदेश ४ ए च्यार प्रकार से जीव दण्डितं होता है, अपने मतलब से करै सो अर्थ दण्ड है और विना मतलब करै वो अनर्थ दण्ड है, अब उपरोक्त च्यारूं भेदों का संक्षेप से वर्णन करते हैं—अपध्यान के दो भेद एक तो आर्तध्यान दूसरा रौद्रध्यान, शब्दादिक पंच इन्द्रियों की तेवीस विषयकी इच्छा करना प्रिय वस्तुवों के संयोग की वान्छा करना और अप्रिय वस्तुवों का वियोग वंछना, निरोग्यता सुख साता से खुशी और सरोग्यता असाता से नाराज होवा सो आर्त्तध्यान है, परजीव की हिन्सा वंछना झूंठ बोलना दूसरेको दुःख देना कैद करनादि वाछे सो रौद्रध्यान है, यह प्रथम भेद कह्या। हिन्सा में प्रवर्त्तना शस्त्र को जोड़ना तीखा करना यह दूसरा भेद है, प्रमाद वश होके घृत के तेल आदिके बरतनों को उघाड़ा रखना जिससे

अनेक जीवों की हिन्सा होय तथा चक्की ऊखल मूसल जन्त्र आदिको देखे विना चलाना सो तीसरा भेद है। और पाप कर्म करने का उपदेश जैसे भाई भतीजा आदि दूसरे को कहना बेठें बैठे क्या करते हो खेती करो कूवा तालाव खोदो वाणिज्य व्यापार करो आदि अनेक तरह से पाप का उपदेश देना ये चौथा भेद जानना। उपरोक्त ये च्यारूं प्रकार से अपने अर्थ करै सो अर्थ दण्ड और विना अर्थ करै सो अनर्थ दण्ड है, अपणी बड़ाई सोभाके निमित्त तथा अभिमान के वश या शरमां शरमी लोकों की लाज से स्वार्थ वश होके उपरोक्त च्यारूं के करने से पाप लगता है परन्तु वो तो अर्थ दण्ड है, विना मतलब वा जिस कर्त्तव्य करने से लौकिक में निन्दा हो सो अनर्थ दण्ड है, इस लिए श्रावक को अनर्थ दण्ड करने का त्याग करना चाहिये तथा अर्थ दण्ड काभी मर्याद उपरात परिहार करना वाजब है, श्रावक अर्थ दण्ड का या अनर्थ दण्ड का त्याग किया सो व्रत है आगार रक्खा सो अव्रत है।

॥ ढाल तेहिज ॥

सुयगडा अंग अध्ययन अठारमां मझार। अनर्थ रा आठ कह्याछै आगार। आरम्भ न्यातील।रै काम। हिन्सा-दिक करै छै ताम ॥ १६ ॥ आघार ते घर हाटादिक काम। परिवारने दास दासी नाम। मंत्री नाग भूत यक्ष देव। त्यांरे निमित हिन्सादि करै स्वमेव ॥ १७॥ यहलोकने परलोक। जीवणूं मर्णूं ने काम भोग। यांरे अर्थ वान्छा किया पाप लागै। अनर्थ किया आठमूं व्रत भागै ॥ १८ ॥ असंयती जीवां रो जीवणूं चावै। असंयती

जीया मे हर्षित थावै। अर्थं बंच्छ्यां तो अर्थं पाप लागै। अनर्थ बंच्छ्यां आठमूं व्रत भागै॥ १९॥ असंयतीरो मरणूं चावै। अथवा त्यांने मारै मरावै। अर्थं मार्यां मरायां पाप लागै। अनर्थ मार्यां मरायां व्रत भागै॥ २०॥ ग्रहस्थि ने काम भोग भोगायवो चावै। अथवा त्यांने काम भोग भोगावै। अर्थं भोगायांथी पाप लागै। अनर्थं भोगावियां व्रत भागै ॥ २१॥ ग्रहस्थि ने उपभोग परिभोग भोगावै। तिण निश्चय पाप कर्म बंधावै अर्थं भोगायां तो अर्थं पाप लागै। अनर्थ भोगायां आठमूं व्रत भागै॥ २२॥ ग्रहस्थिरो काम करै अंश मात। तिणरै निश्चय पाप लागै साचात। अर्थं क्रियां तो अर्थं पाप लागै। अनर्थं क्रिया आठमूं व्रत भागै॥ २३॥ कहि कहि नें कितनूं इक कहुं। अर्थ अनर्थ दण्ड छै बेहु। तिण मे अर्थरी अव्रत राखी छै जांण। अनर्थ दण्ड तणां पचखाण॥ २४॥ याने रूडी रीत पिछाणी लीजे। करण जोग घाली व्रत कीजे। यामें रूडी सैरी तिण मांहि धर्म। कुटो सैरी तेहिज अधर्म॥ २५॥ आठमां व्रतरो वहोत विचार। यो अल्प मात्र कियो विस्तार। हिव नवमूं व्रत कहुं छूं ताय। सांभलज्यो भवियण चितल्याय ॥ २६॥ इति।

॥ भावार्थ ॥

सुयगड़ा अङ्ग सूत्र में अनर्थ दण्ड के आठ प्रकार के आगार श्रावक के कहा है—आयहिउवा १ अर्थात् अपणी आत्मा के हेतु, नाए.उवा २ अर्थात् न्यातीलों के हेतु, आघारे हेउवा ३ अर्थात् अपणों घरके हेतु, परिवारे हेउवा ४ अर्थात् परिवार पुत्र पौत्रादि तथा दास दासी के हेतु, मित्तहेउवा ५ अर्थात् मन्त्री के हेतु, नाग हेउवा ६ अर्थात् नाग देवता के हेतु, भूए हेउवा ७ अर्थात् भूत के हेतु, जख्ख हेउवा ८ अर्थात् यक्ष के हेतु, ये आठ प्रकार के आगार उपरांत श्रावक के अनर्थ दण्ड के त्याग हैं सो आठमां व्रत है, व्रत है सो ही धर्म है, आगार रख्या सो अव्रत है अपणी कचाई है, किन्तु अपणा आत्मा के निमित्त यावत् यक्ष निमित्त जो जो हिन्सादि करता हैं उस में धर्म नही है, इहलोक परलोक जिवितव्य मरण काम भोग इन पाचूं की वन्छनां अपणें मतलव के लिए करने से पाप लगता है और विना मतलव किये आठमां व्रत का भङ्ग होता है, ऐसे ही असंयती जंग्वों का जीवणा मरना अपणें अर्थ के लिये वांछने से पाप कर्म का वन्ध होता है और विना अर्थ वाछने से अष्टम व्रत खण्ड होता है, गृहस्थि को काम भोग भोगने की इच्छा अपणें स्वार्थ के लिए करे या भोगावे तो पाप, विना स्वार्थ गृहस्थि को काम भोग भोगावै तो आठमा व्रत का भङ्ग, तात्पर गृहस्थि का अंश मात्र काम करना कराना अनुमोदना इन तीनूं करणों में पाप है श्रावक करता कराता है :सो धर्म नही है सासारिक व्यवहार है। धर्म तो वोही है कि जितने २ त्याग हैं। स्वामी भीखनजी कहते है कि अव कहि कहके कितना कहूं अर्थ और अनर्थ इन दो प्रकारों से पाप लागता है इस लिए श्रावक के अनर्थ पाप करने का त्याग आठमा व्रत में है, इस आठमा व्रत को अच्छी तरह समझ के यथाशक्ति करण योग युक्ति त्याग करना चाहिए जिसमें अपना व्रत भंग न हो जो सेरी रुकी है सो धर्म है नहीं रुकी वो अधर्म है ॥ इति ॥

———

॥ अथ नवमां व्रत ॥

॥ दोहा ॥

पांच अणूँ व्रत पालतां । गुण व्रत देश कहाय । शिखा व्रत च्यारूं चोकडी । कहै उपमा ल्याय ॥ १ ॥ जिम देवल कलशी चढै । मुकुट मस्तक अंत । इम समदृष्टि जीवड़ा, शिखा व्रत पालंत ॥ २ ॥ व्रत आठूं पहिली कह्या, जाव जीव लग जाण । शिखा व्रत च्यारूं तणां विविध पणें पचखाण ॥ ३ ॥ सामायक मुहूर्त एक नौं, जो करै चित ल्याय । देशावगासी व्रतना, जेम करै तिम थाय ॥ ४ ॥ पोसो हुवै दिन रातरो, ध्यावै निरमल ध्यान । बारमूं व्रत शुद्ध साधुने, प्रतिलाभ्यां थी जान ॥ ५ ॥

॥ भावार्थ ॥

पांच अणू व्रत अर्थात् महाव्रतों से छोटे, तीन गुण व्रत याने पंच अणूं व्रतों को गुण दायक ए आठ व्रत तो कहे अब इन व्रतों के शिखा समान च्यार शिखा व्रत कहते हैं, जैसे मन्दिर के कलशा और मस्तक के मुकुट है वैसे ही आठूं व्रतों के ये च्यार व्रत है, पहले व्रत से आठमां व्रत तक के त्याग तो जावज्जीव पर्य्यंत होते है किञ्चित् काल के नहीं होते और इन च्यारूं व्रतों में प्रथम व्रत तो एक महूरत का हैं, दूसरा जितना काल के करें उतनां हीं काल का होता है, तीसरा दिवस रात्रि प्रमाण होता है, और चौथा शिखा व्रत शुद्ध साधू मुनिराजो को निर्दोष आहार पानी आदि चवदह प्रकार का दान देने से होता है, जिस में प्रथम शिखा व्रत कहते हैं।

॥ ढाल ॥

(मम करो काया माया कारमी ॥ एदेशी ॥)

सामायिक समता पणे। सावद्य जोग पचखाणजी। काल थकी महूरत एकनी। दुविहं तिविहेणं जाण जी॥ शिखाजी व्रत आराधिए॥ १॥ उत्कृष्टै भांगे करी। तीन करण तीन जोगजी॥ ग्रहवासतणी वार्ता तणो। न करै हर्ष ने सोगजी॥ शि॥ २॥ उपगरण सामायक करता राखिया॥ तिण उपरान्त किया पचखाणजी॥ राख्याते अव्रत परिभोगरी। तिणरो पाप निरन्तर जाणजी॥ शि०॥ ३॥ जे उपगरण सामायो मे राखिया। त्यांरो पिण करै प्रमाणजी॥ बाकी तीन करण तीन जोगसूं। पांचूंही आस्रवना पचखाणजी॥ शि॥४॥ ते उपग्रण पहरै ओडै वावरै। बिछावणादिक करै बारंबार जी। ते शरीर री साता कारणे। ते तो सावद्य योग व्यापार जी॥ शि०॥५॥ वलि गहणां आभरण कने रह्या॥ ते पिण् अव्रतमे जाणजी॥ तिणरो पाप निरन्तर जीवरै। सामायिक मे पिण लागैछै आण जी॥ शि०॥ ६॥ ते गहणां आभ्रणरा जतन करै। त्यांसे राजी हुवै तिणवार जी आघा पाछा समारै तिण अवसरै। सावद्य 'जोग व्यापारजी ॥ शि०॥ ७॥ उपग्रण गहणां कने

राखिया । ते तो नही आवै समाईरै कामजो ॥ काम तो आवै परिभोगमें । सुखसाता शोभादिक तामजो ॥ शि० ॥ ८ ॥ सामाई री दीधी जिन आगन्या । ते समाई छे संवर धर्म जी ॥ उपग्रण गहणां परिभोगव्यां। तिणसे तो लागे छे पापकर्म जी ॥ शि० ॥ ६ ॥ समाई मे श्रावक री आतमां । अधिकरण कही जिन रायजी ॥ भगवतीरे शतक सातमे । पहिला उद्देशा रे मांयजो ॥ शि० ॥ १० ॥ अधिकरण ते शस्त्र छ:कायनो । तिणरो साथरो करे अंशमात जी ॥ तिणरी सार संभार जतन करै । ते सावद्य जोग साक्षतजी ॥ शि० ॥ ११ ॥ कपड़ो ओडै पहरै बावरै । वलि वैयावच करै तायजो ॥ तिण अधि- करण ने सातरो कियो । तिणरी आज्ञा नही दे जिन रायजी ॥ शि० ॥ १२ ॥ अंश मात्र शरीर रो कारज करै । ते तो सावद्य जोग छे तायजी । तिणसु पाप लागेछे जीवरै । तिणरी आज्ञा नहीं देवै जिन- रायजी ॥ शि० ॥ १३ ॥ हालवो चालवो शरीर रो । सुख साता काज करै जाण जी ॥ ते सावद्य जोग श्रीजिन कह्या । तिणसूं पापकर्म लागै छे आण जी ॥ शि० ॥ १४ ॥ जिन कर्त्तव्य कियां जिन आज्ञा नही । ते सावद्य जोग साक्षात जी ॥ जिण कर्तव्य

कियां छे जिन आज्ञा। ते निरवद्य योग्य विख्यात जी ॥ शि० ॥ १५ ॥ उपग्रण गहणा शरीर ना। जतन करै समाई मझारजी ॥ त्याने जिन आज्ञा नहीं सर्वथा। ते सावद्य जोग तणा व्यापार जी ॥ शि० ॥ १६ ॥ कानै राख्या त्यांरा जतन करै। यो राख्यो समाईमे आगार जी ॥ समाई करतां जे नही राखिया। त्यांरा जतन नही करै लिगार जी ॥ शि० ॥ १७ ॥ श्रावक रा उपग्रण अव्रत मझै। कह्या उववाई ने सुयगड़ा अङ्गजी ॥ त्यांने सेवै सेवावै ते सावद्य जोग छे। तिणरी आज्ञा नही दे जिनरङ्ग जी ॥ शि० ॥ १८ ॥

॥ भावार्थ ॥

सामायिक अर्थात् याने समभाव रखना समता रखना उसको सामाई कहते हैं एक महूरत तक सावद्य जोगके त्याग करें जघन्य दो करण तीन जोगमें उत्कृष्ट तीन करण तीन जोगसे जानना, सामाइक में ग्रहस्थाश्रमकी वातें निन्दा विकथादि नही करना और जो कपड़ा आदि उपग्रण सामाई मे रक्खे हैं वो अव्रत है आगार उपरान्त सावद्य जोगके त्याग किये हैं सो सामाइक है जिसमें श्रावकके सवर होता है व की जो जो उपग्रण तथा गहणां रक्खा है सो सावद्य जोग है जिसमें पाप कर्म निरन्तर लगता है क्यों के जो कपडा तथा गहणा आदि आगार रक्खा है सो अव्रत हैं उपग्रणोंकी सार संभार करता है बिछावणादि वार वार करता है सो शरीरकी साता के लिये हैं उसमें सामाइक पुष्ट नही होती इसलिये सावद्य जोग व्यापार है, गहणा कपड़ादि जो रक्खा है वो सामाइकके काम नही आते हैं वोतो परिभोग

के काम आते हैं अथवा अपणी शोभा के निमित्त पहरते ओढ़ते हैं, सामइक की श्रीजिनेश्वरदेवों की आज्ञा है किन्तु उपग्रण कर्ने रक्खा उसकी आज्ञा नहीं है इसलिये उन्हें परिभोगव्यां पापकर्म लगता है, श्रीभगवती सूत्रके सातमा शतक पहला उद्देशामें सामाइक मे श्रावक की आतमा अधिकरण कही है और अधिकरण है सो छःकाय जावोंका शस्त्र है तो शस्त्रकी सार संभार करेसो निरवद्य जोग कैसे हो सकते हैं वो तो सावद्य जोगही है इसलिए जिन आज्ञा नहीं है, तात्पर जिस कर्त्तव्य में जिन आज्ञा है निरवद्य जोग है और जिस कर्त्तव्य में जिन आज्ञा नहीं है सो सावद्य जोग है।

कोई कहै सामाइक कीधी तेहने। सावद्य जोग पचखाणजी ॥ तिणरै पापरो आगार किहांथी रह्यो। कोई एहवी पूछा करै आणजी ॥ शि० ॥ १६ ॥ तेहने जवाब इम दीजिए। सर्व सावद्यरा नहीं पचखाणजी ॥ सर्व सावद्यरो त्याग साधां तणे। तेहनो करो पिछाणजी ॥ शि० ॥ २० ॥ छः भागा समाई मे पचखिया। तिणरै तीन भांगारो आगार जी ॥ तिणरै पाप लागैछै निरन्तरै। एहवा सावद्य जोग व्यापार जी ॥ शि० ॥ २१ ॥ तिणरै पुत्रादिक हुआं हर्ष हुवै। मूवां गयां होवै सोगजी ॥ इत्यादि आगार सामयिक मझै। एहवा सामयिक मे सावद्य योगजी ॥ शि० ॥ २२ ॥ गहणा कपड़ा राख्या तेहना जतन करै समाई रे मांयजी ॥ ते पिण सावद्य योग छे। तिणरो आज्ञा न देवै जिनरायजी ॥ शि० ॥

२३ ॥ शरीर कपड़ादिक तेहना । जतन करै सामायिक मांयजी । लाय चोरादिकरा भय थकी । एकान्त स्थानक जयणा से जाय जी ॥ शि० ॥ २४ ॥ ते पिण सावद्य योग छे । आगार सेंयो समाईरै मांहिजी ॥ सामायिकम समता राखणी । चित न चलावणु ताहिजी ॥ शि० ॥ २५ ॥ लाय सर्पादिक करा भयथकी । जयणासूं निसर जाय भागजी ॥ पाखती मनुष्य बैठा हुवै । त्यांने तो नहीं ले जावै बाहरजी ॥शि०॥ २६ ॥ आपरो तो आगार राखियो । औरां रो नहीं छे आगारजी । औरां नैं त्याग्या समाई मझे । त्यांने किण विधि ले जावै बाहरजी ॥शि०॥ ॥ २७ ॥ लाय चोरादिक रा भय थकी । राख्या ते द्रव्य ले जाय जी ॥ पाखती कपड़ादिक हुवै घणा । त्याने तो बाहर न ले जावै तायजी ॥ शि० ॥ २८ ॥ राख्या ते द्रव्य ले जावतां । समाई रो भङ्ग न थाय जी ॥ त्याग्या छे त्याने ले जावतां । समाई रो व्रत भाग जायजी ॥ शि० ॥ २९ ॥ तिणसूं सर्व सावद्य जोगरा । समाईमें नहीं पचखाणजी ॥ आगार उपरान्त सावद्य जोगरा । पचखाण किया छे पिछाणजी ॥ शि० ३० ॥ तिणसूं त्याग किया तिके । ते सावद्य जोगरा पचखाणजी ॥ त्याग नहीं सर्व सावद्य जोगरा ।

ते तो मारग साधु तणो जाणजो ॥ शि० ३१ ॥

॥ भावार्थ ॥

सामायिक में सावद्य जोग के त्याग हैं सो सर्वतं नहीं है देशतः है, तब कोई कहै समायिक पचखते वक्त सावद्य जोग के त्याग करते हैं उस वक्त कौनसा पाप करण का आगार है एसा कहै उन्हे जवाब देना चाहिए कि साधके तो 'सवं सावज्झ जोगं पचख्खामि" ऐसा पाठ है और श्रावक के सामायिक में "सावज्झं जोगं पचख्खामि" ऐसा पाठ कहा है तो खुलासा मालूम होगया कि श्रावक के सामायिक में सर्व सावद्य जोग के त्याग नहीं है तथा छः भांगासे सामाइक करनेसे तीन भागे आगार रहा सो सावद्य है उनका पाप अव्रत का निरन्तर जीवके सामाइक में लागता है अर्थात् अनुमोदनेका मन वचन काया आगार है, पुत्रादि होनेकी खबर सुनके हर्ष और मरनेकी वा खोये गये की सुनके सोग आता है और जो गहना कपडा सामाइक में पहनाहुआ है वो परिभोग है उसे भोगता है सो अव्रत सेता है तथा उनकी सार संभार करता है वोभी सावद्यही जोग है, शरीरका यतन करता है लाय चोर आदिका भयसे जयणायुत एक स्थानसे दूसरे स्थान जाता है सो ग्रहस्थके जाने आनेकी जिन आज्ञा नहीं है इत्यादि अनेक कार्य जो जो जिन आज्ञा बाहरका कार्य सामाइक में करता कराता है सो सव सावद्य जोग है जिसमें पाप कर्म लगता है, लाय चोर सर्पादिकके भयसे सामायिक में एक जगह से दूसरी जगह में जाता है जिसमें सामाइक का तो भंग नहीं होता क्योंके यह आगार रक्खा हुआ है परन्तु सावद्य जोग है सो तो पाप लगता है, पास में और दूसरे बैठे हुए हैं उनको बाहर लेजाना आगार नहीं है इसलिए उनको बाहर नहीं लेजा सक्ता, जो जो कपडादि उपग्रण आगार रक्खा है उन्हेंही लेजाता है पास में अपने कपड़े आदि अनेक वस्तु पडी है लेकिन वो आगार नहीं इसलिए उन्हें नहीं लेता है, जो आगार रक्खा है उनहीं की सार

संभार करना है इसवास्ते श्रावक के सर्वतः सावद्य जोगोंके त्याग सामायिक में नही है।

॥ ढाल तेहिज ॥

उपग्रण राख्या सामाई मझे। तेतो पहिले करण लिया जाणजी ॥ ते ओरां ने भोगवासो किण विधे। ओरांरातो किया पचखाणजी ॥ शि ॥ ३२॥ द्रव्य थकी लिण उपरान्तरा । सगलारा किया पचखाणजी ॥ खेत्र थी सर्व क्षेत्र मझै। काल थी महूरत एक जाणजी ॥ शि ॥ ३३ ॥ भाव थकी राग द्वेष रहित छे। जब संवर निरजरा गुण थायजी ॥ इणरीते समाई ओलखी करे। जब सामाइक हुवै तायजी ॥ शि ॥ ३४ ॥ अवर सघला ने त्याग दिया। त्यांसू करे संभोगजी ॥ तिणसूं भागे समाई व्रत तेहनूं। इणरा वर्‍यां छे सावद्य जोगजी ॥ शि ॥ ३५ ॥ कोइ सामाई मे सामाई तणूं। कारज करणूं राख्यो छे आगारजी ॥ तिणरो कार्य कियां समाई भागे नही। तिणरो पिण करै विचारजी ॥ शि ॥ ३६ ॥ समाई मे मांडो मांहि कारज करे। तेतो सूत्र मे नही छे तायजी ॥ ते निश्चय थापणी आवे नही। ज्ञानी वदे ते सत्य वायजी ॥ शि ॥ ३७ ॥ कोई कहे समाई में राखी पूंजणी।

राखीते दयारै कामजी ॥ तिणरो अन्नाव सूणू विवरा सुद्ध । चित्त राखी एकांत ठामजी ॥ शि ॥ ३८ ॥ शरीरादि पूंजे समाई मभे । मात्रादि परठै पूंजजी ॥ एहवा कार्यरी जिन आज्ञा नही । तिणमें छकै कहै ते अबूझजी ॥ शि ॥ ३९ ॥ शरीर पूंजे परठै मात्रो । ए शरीरादिकराछैकाजजी ॥ जो धर्म तणु कारज हुवे । तो आज्ञा देवै जिन राजजो ॥ शि ४० ॥ जो पूंजणुं परठणुं करै नहीं । कायस्थिर राखे एक ठामजी ॥ हस्तादिक विना हलावियां । रहणो नही आवैछै तामजी ॥ शि ॥ ४१ ॥ वले अ-बाधा बडी नीतरी खमणी न आवे छै तामजी । तिणसूं पूंजे छै जायगा जोयने, ते समाई तणूं नही कामजी ॥ शि ॥ ४२ ॥ माखी माछर कीडी आदि दे । ते तो लागी छै शरीररै आयजी । ते खमणी न आवे तेहथी । तिणसूं पूंज परठा करै तायजी ॥ शि ॥ ४३ ॥ जो काया स्थिर राखै एक आशयें । तिणरे पूंजणीरो कांईकामजी ॥ परिषह खमणी नही आवै तेहसे । पूंजणी राखी छै तामजी ॥ शि ॥ ४४ ॥ जो इतनी कह्यां समझ पडै नही । तो राखणी जिन प्रतीतजी ॥ जिन आज्ञा बाहर धर्म श्रद्धने । नहीं करणी एहवी अनीतजी ॥ शि ॥ ४५ ॥ शरीर

उपग्रगारा जाबता । क्रियां सावद्य जोग व्यापारजी ॥ जे शरीरसूं निरबद्य कर्तव्य करै तिणने जिन आज्ञा दे श्रीकारजी शि ॥४६॥ इति ॥

॥ भावार्थ ॥

सामाइक में जो उपग्रण रखा है सो प्रथम करण परिभोगने को रखा है वो दूसरे को कैसे भोगावै दूसरेको भोगानेका तो त्याग है इस लिए सामायिक पचखने समय कहता है द्रव्य थकी नो जो कर्ने रखा सो द्रव्य उपरान्त त्याग क्षेत्र थकी सर्व क्षेत्रो में यह त्याग है अर्थात् किसी जगह भी आगार नहीं, काल थको एक महूरत लग, भावथी रागद्वेष रहित है तब संवर निरजरा मयी गुण निपजता है, इस तरह सामाथिक को पहचान के सामायिक करणें से सामायिक होती है, त्यागे हुएसे संभोग करने से सामायिक व्रत भंग होता है इसवास्ते जो कार्य आगार नही रखा है उन्हें नहीं करना चाहिए, कितनेक सामाइक में सामाइक वालेका कार्य करना आगार रखके कार्य करते हैं तो उनकी सामायिक नहीं भागती है परन्तु उसका भी प्रमाण करना अवश्य है, सामायिक में दूसरे सामायिक वाले का काय करना आगार रखे सो सूत्रों में नही कहा है इसमें इस बोलकी स्थाप नहीं की जाती इसमें निश्चय ज्ञानी कहै सो सत्य है, कोई कहै दया पालनेके निमित्त समाई में पूंजनीरखते हैं सो पूजनी रखने में धर्म है ऐसी कहै जिसका जबाव यह है कि पूंजणो रखते हैं सो अव्रत में है अपना शरीर स्थिर नही रह सका चञ्चलता के कारण हाथ पग हलाता है तथा एक जगहसे दूसरी जगह अंधेरे में जाना आता है वा मख्खी मच्छर आदि शरीर पै बैठते हैं तो उनको जयणासे पूंजनां कीडी कुंथुवादि जीवों की अनुकम्पा लाके उन्है नही मारना यह जो दया भाव है सो निरबद्य है किन्तु पूंजणो रखी सो निरबद्यजोग नहीं है अव्रतास्त्रव है सावद्य योग जिन आज्ञा बाहर है, मक्खी मच्छर आदि

शरीर के चटके देवे यो परिषह खमना परन्तु खमें नही आते तब पूंजणी से उन्हें दूर करता है यहतो प्रत्यक्ष अपनी कचाई है जो अपनी काया एक आसन स्थिर रखें तो पूंजणी की क्या जरूरत है इस लिये पूंजणी रखता है सो शरीरके काम आती है लेकिन सामायिक के काम नहीं आती इसलिए सावद्य जोग है स्वामी श्रीभीखनजी कहते हैं कि इतनी कहें भी समझ नहीं पडे तो श्रीजिनेश्वरोंकी प्रतीत रखना चाहिए समझना चाहिए कि जिस कार्यकी जिन आज्ञा है सो कार्य करते कराते अनुमोदते धर्म है ओर जिस कार्य की जिन आज्ञा नहीं है उसे करते कराते अनुमोदते धर्म नहीं है ॥ इति ॥

॥ अथ दशमू देशावगासी व्रतम् ॥

॥ दोहा ॥

दशमूं देशावगासी व्रत छै। तिणरा भेद अनेक ॥ थोड़ासा प्रगट कहूं। ते सुणजो आण बिवेक ॥१॥

॥ ढाल मम करो काया माया कारमी ॥

॥ दोहा ॥

देशावगासी व्रतनां। भांगा हुवे विविध दोयजी ॥ पहलो छै छट्टा नोपरे। दूजो सातमां ज्यूं होयजी ॥ सिखाजी व्रत आराधिये ॥ १ ॥ दिन प्रते प्रभात थी। छहुं दिशिरो कियो प्रमाण जी ॥ मर्यादा कीधी

तिण बारली। पांचूं हीं आस्रवनां पचखाणजी ॥ सि ॥ २ ॥ जे भूमिका राखी छै मोकली। तिण मांहि द्रव्यादिकनो व्यापारजी ॥ मर्यादा शक्ति सारू करै भोगादिक करै परिहारजी ॥ सि ॥ ३ ॥ कालथी दिवसने रातनूं। भावथी विवध प्रकारजी ॥ करण जोग घालै तेतला। जेतला करै परिहारजी ॥ सि ॥ ४ ॥ वलि जघन्य नवकारसी आदिदे। उतकृष्टो घाले काल कोयजी ॥ मर्यादा सुं त्यागे सावज्झ भणी। जिम करै तिमि होयजी ॥ सि ॥ ॥ ५ ॥ कोई करै छै त्याग हिंसा तणु। तिण में कालरो करै प्रमाणजी ॥ ते त्याग पूरा हुवां तेहने। आगे तो नहिं पचखाणजी ॥ सि ॥ ६ ॥ हिंसा झूंठ चोरी मैथुन नूं। वलि पांचलूं परिग्रह जाणजी ॥ एह पांचूं ही आस्रव द्वारनुं। काल घालिनें करै पचखाणजी ॥ सि ॥ ७ ॥ प्रमाण करै छब्बीस बोलनूं। पंदरा कर्मादान तणूं प्रमाणजी ॥ वलि सचितादि चवदह नियमनूं। यांरा नित्य नित्य करै पचखाणजी ॥ सि ॥ ॥ ८ ॥ नवकारसी पोहरसी पुरमुढ। येकाशणों आंबलादिक तासजी ॥ उपवास बेलादिक तप करै। उत्कृष्टो करै छमासजी ॥ सि ॥ ९ ॥ तपतणूं कष्ट हुवे तिको। ते

करणो निरजरा तणो जाणजो ॥ खावा पीवाणो व्रत हुओ तिका। ते दशमूं व्रत हुवे आणजो ॥ सि ॥ १० ॥ जे जे सावद्य त्यागे तेहमें। कालरो करै प्रमाणजो ॥ तेह दशमूं व्रत नीपजै। इणमें जावज्जीवरा नहीं पचखाणजो ॥ सि ॥ ११ ॥

॥ भावार्थ ॥

अब दशमां देशावकासी व्रत कहते हैं—अर्थात् कालका प्रमाण करिके त्याग करै वो दशमां व्रत है यह दो भांगोंसे होता है प्रथमां भांगे तो छट्ठाव्रत सम, और द्वितीया भागे सातमां व्रत सम है, जिसका भेद विवध प्रकार से जानना जिसमें इहां संक्षेपमात्रसे वर्णन करते हैं द्रव्यतः दिवश प्रते प्रभात से छहुदिशोका प्रमाण करके मर्यादा उपरांत पांच आस्रवद्वार सेने सेवानेका पचखाण करना, जितनी भूमि रखी उसमें भी यथाशक्ति द्रव्यादिक की मर्यादा उपरान्त विषय भोगादि का त्याग, कालथकी दिवस रात्रि प्रमाण, रागद्वेष रहित उपयोग सहित अनेक प्रकार अर्थात् इच्छा प्रमाण करण योग से, और गुणथकी संवर निरजरा ; पुनः जघन्य नवकारसी अर्थात् एक महूरत तक और उत्कृष्ट जितना काल तक करै उतनाही काल तक सावद्य जोगोंके त्याग और हिन्सादि पंच आस्रवद्वार के त्याग जैसे जैसे करै उसही तरह से दशमाव्रत होता है यह प्रथम भांगा कह्या; दूसरे उलणिया विहं आदि छवीस बोल, इंगालिक कर्म आदि पंदरह कर्मादान, और सचितादि चवदह नियम की मर्यादा उपरान्त जितने कालतक के त्याग करैं सो दशमाव्रत है, नवकारसी पहोरसी पुरमुढ अर्थात् डेढ पोहरसी, एकाशणा उपवास बेला तेला आदि छमासी तप श्रावक करै सो दशमां व्रत है, तप करते कष्ट सहन करैं जिसमें निरजरा होती है और सावद्य जोगोंके त्यागने से श्रावकके संवर होता है सो दशमां व्रत संवर

है, तात्पर्य इसमें जावज्जीवके पचखाण नहीं है, कालकी मर्याद रखके जो जो त्याग किये सो व्रत हैं आगार रक्खा उसे सेता सेवाता और अनुमोदता है सो अव्रत हैं जिससे पाप कर्मोपार्जन होता है।

॥ अथ इग्यारमां व्रत ॥

॥ दोहा ॥

श्रावकरो व्रत ग्यारमूं। पोषध कह्यो भगवान॥ सिखा व्रत रलियामणों। हिवे सुणूं सुरत दे कान ॥ १ ॥

॥ ढाल देशी तेहिज ॥

हिवे पोषध व्रत रलियामणूं। पचखे चिहुं विधि आहारजी॥ अवम्भ मणी सुव्रण तजे। माला वणग विलेवण परिहारजी॥ सिखाजी व्रत आराधिए ॥ १ ॥ शस्त्र मूशलादिक आदि दे सावज्झ जोग तणा पचखाणजी॥ कालथी दिवसने रातनूं। एक पोसा तणूं प्रमाणजी ॥ सि ॥ २ ॥ जघन्य दोय करण तीन जोगसूं। करै सावज्झ जोग पचखाणजी॥ कोई उत्कृष्ट भांगे करै। तीन करण तीन जोगसे जांणजी ॥ सि ॥ ३ ॥ द्रव्यथी कनैं तिण उपरांतरा

किया सर्व द्रवांरा पचखाणजी ॥ खेत्रथी सर्व खेतां मझे । कालथी दिवसने रात्रिरा जाणजी ॥ सि ॥४॥ भावथी रागद्वेष रहित करे । बलि चोखे चित्त उपयोग सहितजी ॥ जब कर्म रुके छे आवता । बलि निरजरा हुवे रूडी रीतजी ॥ सि ॥ ५ ॥ उपग्रण पोसामे राखिया । तिण उपरान्त किया पचखाणजी ॥ राख्या ते अव्रत परिभोगरी । तिणरो पाप निरन्तर लागे छे आणजी ॥ सि ॥ ६ ॥ पोसाने सामाइक व्रतनां । सरिषां छे पचखाणजी ॥ सामाइक तो महूरत एकनी । पोषो दिवस रातरो जाणजी ॥ सि ॥ ७ ॥ पोषाने सामाइक व्रतमें । यां दोयांमे सरिषो छे आगारजी ॥ ते कह्या छे सघलाही अव्रत महो ते जोय करो निस्तारजी ॥ सि ॥ ८ ॥ जब कोई कहै पोषध व्रतमे । मणी सुव्रणादि पचखाणजी ॥ तिणसूं मणी सुव्रणादि कनें राखियां पोषो भाग गयो जाणजी ॥ सि ॥ ९ ॥ पोसा मांहि कनें राखीया । मणी सुव्रणादिक जाणजी ॥ तिण उपरान्त राखणरा पचखाण छे ॥ तसुं उत्तर यह पिछाणजी ॥ सि ॥ १० ॥ उमुक कहितां मूंकी दिया । त्यां मणी सुव्रणरा पचखाणजी ॥ कनें रह्या त्यांरी अव्रत रही । भगवती सूं करिजो पिछाणजी ॥ सि ॥ ११ ॥ जो

मणी सुत्रणरा जावक पचखाण हुवे। तो उ-
मुकरो पाठ कहता नांहिजी ॥ ओतो निर्णय उघाडो
दीसी गयो। विचार देखो मन मांहिजी ॥ सि ॥ १२ ॥
श्रेणिकने कृष्णजीरी राणियां। इत्यादिक राणियां अनेक
जी ॥ त्यां पोषा किया दिसे गहणां थका। समजो
आण विवेक जी ॥ सि ॥ १३ ॥ त्यांरी चूड़ामे हीरा
पन्ना जड़्या। वली दांतांमें जाणिजे मेखजी ॥ और
गहणां त्यांरे पहरणे। तां उतारया न दीसि छे एक
जी ॥ सि० ॥ १४ ॥ भारी भारी जुहार चूड्या जड्या।
वलि भारी भारी गहणां हाथ गला मांहिजी ॥ ते सघ-
लाही किम उतारसी। येतो मिलतो न दीसे छे न्याय
जी ॥ सि ॥ १५ ॥ त्यां कीधी समाई संध्याकालरी।
समाई कीधी रात प्रभातजी ॥ ते खिण २ में किम
उतारसी। या पिण मिलती न दीसे बात जी ॥ सि
॥ १६ ॥ सामाईमें गहणां नहिं राखणा। तो चूड़ां
नहीं राखणो तायजी ॥ गहणांनें चूड़ां तो एकही
जछे। दोनूं ही आभूषण म्हांय जी ॥ १७ ॥
सामाईने पोसा तणो। दोयां री विधि जाणिजो एक
जी ॥ रीत दोयांरी बरोबरी। समझो आणि विवेक
जी ॥ सि ॥ १८ ॥

॥ भावार्थ ॥

अब इग्यारमां पोषध अर्थात् धर्म पुष्टी रूप व्रत कहते हैं जिसमें इस माफिक त्याग होते हैं।

१ असाण (आहार) पाण (पाणी) खादिम (मेवादिक) स्वादिम (पान सुपारी लवंगादि) के त्याग।

२ अवम्भ अर्थात् अब्रह्मचर्य ते मैथुन के त्याग।

३ उमक मणीं सुव्रण अर्थात् रत्नादिक वा सुवर्णादिक वोसराये हुए के त्याग।

४ माला अर्थात् पुष्पमाला फूल आदि के त्याग।

५ वणग अर्थात् गुलाल अबीर रङ्ग आदि के त्याग।

६ विलेपन अर्थात् केशर चन्दन आदि का विलेपन करने का त्याग

७ सथ मूशलादि सावज्झ जोग अर्थात् शस्त्र मूशल आदि सावद्य जोग वर्तने का त्याग।

उपरोक्त सात प्रकार के त्याग किये जाते हैं सो खेत्र थी सर्व खेत्रों में, कालथी अहोरात्री प्रमाण, दोय करण तीन जोगों से वा तीन करण तीन जोगों से, भावथी राग द्वेष रहित गुणथी संवर निरजरा, इस प्रकार अपने पास में ज्यो वस्त्र वा गहणा आदि द्रव्य पोसा पचखते वक्त रक्खा हैं उन द्रव्यों उपरांत सावद्य जोग सेना सेवाना का त्याग होता है, जो उगरण कने रक्खे वो अव्रत में है जिससे परिभोग की अव्रत पोसा में निरंतर लगती है, पोसा और सामाईक के आगार एकसा है आगार उपरांत त्यांग किये सो सामाईक का नवमां व्रत एक महूरत का है और पोसा इग्यारमां व्रत रात्रि दिन का है, जव कोई ऐसा कहे कि पोसा अङ्गीकार करता है तव सुव्रणादि तथा मणीरतनादि का पचखाण करता है इसलिये पोसा में गहना नहीं रखना चाहिये जिसका जवाव यह है कि पोषध व्रत मे उमक मणी सुव्रण के त्याग है अर्थात् मूंके हुए मणी सुव्रण रखणे के त्याग हैं अपने पास में गहनो पहरा हुआ है वो तो आगार है इस वास्ते त्याग भंग नही होता, आगले

जमाने मे भी कृष्ण जी और श्रेणिक राजा की राणियों ने पोषह किये हैं उनकी चूडियों मे तथा आभूषणों में अनेक बहु मूल्य रतन जड़े हुए थे परन्तु चूडियां उतार कर पोषध किया ऐसा अधिकार कहीं भी सूत्रों में आया नही तथा सामाईक व्रत करते वक्त भी पहने हुए आभूषणो का आगार है सो अव्रत आस्रव द्वार है परन्तु त्यागों का भङ्ग नही होता यदि आभूषण रखणे से सामइक और पोषध व्रत का भङ्ग होय तो फिर किञ्चित मात्र भी सुवर्ण अथवा रतन जडित आभूषण नही रखना चाहिये स्त्री जाति के सामाइक और पोषध में चूडियां तो अवश्य ही रहती है, किसी स्त्रीने संध्या समय वा अर्द्ध रात्री समय सामाइक करी तो वेर वेर में चूडियां कैसे खोलेगी चूडियां खोल के सामाइक करै ये न्याय तो मिलता नहीं इसलिये स्पष्ट ही मालूम हो गया कि मणी सुवर्णादिका सर्वथा प्रकार त्याग नही है और जो सामाइक की विधि है वोही पोषध की विधि है।

॥ ढाल तेहिज

यह लोकरै अर्थ करै नहीं। न करै खावा पीवारै हेतजी ॥ लोभ लालच हेतु करै नही। परलोक हेत न करै तेथजी ॥ सि ॥ १९ ॥ संवर निरजरा हेतै करै। और बंछा नहिं कांयजी ॥ शुध परिणामां पोसो करै। ते भावथकी शुद्ध थायजी ॥ सि ॥ २० ॥ कोई लाडूआं साटै पोसो करै। कोई परिग्रहो लेवा करै तामजी ॥ कोई और द्रव्य लेवा पोसो करै। ते कहवा नें पोसो छै नामजी ॥ सि० ॥ २१ ॥ ते तो अरथी छै एकान्त पेट रो। ते मजूरिया तणी छै पातजी ॥

त्यांरा जीवरी कारज सरै नहीं । उलटी घाली गला मांहि रांतजी ॥ सि ॥ २२ ॥ लाडूआं साटै पोसा करावसी । अथवा धन देई तामजी ।। ते कहि-वानें पोसो कराविया । पिण संवर निरजरा नूं नहीं कामजी ।। सि० ॥ २३ ॥ कर्म काटण करैं मजूरिया । त्यांरा घट मांहि घोर अज्ञानजी ।। लाडू खवाय पोसा करावणूं । ये तो कठे ही न कह्यो भगवानजी ॥ सि० ॥ २४ ॥ करम काटण करै मजूरिया । त्यांरा घट मांहि घोर अंधारजी ॥ पइसा देईने पोसा करावणां । ते नहिं चाल्या सूत्र मभारजी ॥ सि० ॥ २५ ॥ मजूरिया करै खेती निदाणवा । मजूरिया करै घर करावा कामजी ॥ कड़ब काटण करै मजूरिया । कर्म काटण नहिं चाल्या तामजी ॥ सि० ॥ २६ ॥ खेत खड़वा नें चालया मजूरिया । वलि भार लेजावण कामजी ।। धान खांडण करै मजूरिया । कर्म काटण नें नहिं चालया तामजी ॥ सि० ॥ २७ ॥ विरक्त होय काम भोगथी । त्यांने त्याग्या छै शुद्ध प्रणामजी ।। मुक्तिरै हेतु पोसो करै । ते असल पोसो कह्यो स्वामजी ॥ सि ॥ २८ ॥ इण विधि पोसो किया थकां । सोभसी आतम कार्यजी ॥ कर्म रुकसी ने वलि

टूटसी। इम भाषियो श्री जिनरायजी ॥ सि ॥ २९ ॥
इति ॥

॥ भावार्थ ॥

पोषध यह लोक के लिये परलोक के लिये अर्थात् परलोक में सुखों की बांछा निमित्त और खाने पीने के लिये तथा किसी प्रकार का लाभ लालच के निमित्त नहीं करना चाहिये, एकान्त संवर निरजरा के निमित्त पोषध व्रत करने से भाव पोसा होता है, यदि किसी ने लाडू खाने के या पारिग्रह लेने के निमित्त पोषध किया तो वो सिर्फ नाम मात्र पोसा है, लाडू खाने के निमित्त पोसा किया सो तो पेटार्थी है उन्हें मजदूरों की पंक्ति में जानना उनका कार्य सिद्ध नहीं होता है उन्हों के तो अशुभ कर्म का बंध होता है, इस ही तरह किसी ने लाडू खवा के या धन देके पोसा कराया तो वो नाम मात्र पोसा कराया जानना ऐसे पोसा कराने से संवर निरजरा कदापि नहीं होता है और दूसरों का माल लाडू आदि मिष्टान खाके जो मजदूर पोसा करते हैं उनके हृदय में घोर अज्ञान है क्योंके उन्हों ने तो सिर्फ खाने के निमित्त पोसा किया है वो लोग यह नहीं जानते कि पोसा क्या है और कैसे होता है, कर्म काटणे के निमित्त मजदूरों से पोसा कराना ऐसा कही भी भगवान ने नही कहा है पैसा देके मजदूरों से पोसा कराना और पैसा लेके पोसा करना ऐसा अधिकार किसी भी सूत्र में नहीं है परन्तु भोले लोक कुगुरुओंके उपदेश से जिमा के या पैसा देके पोसा कराते हैं वो अपनी मान बड़ाई और जशो कीर्त्ति के कामी हैं, खिलाने और धन देने से धर्म कदापि नही होता है यदि ऐसे पोसा हो तो चौथे आरे में तो धनाढ्य श्रावक बहोत थे किन्तु किसी ने भी इस तरह मजदूरों से पोसा कराया नहीं, और जो श्रावक है वो तो इस तरह पोसा करता नहीं, कर्म काटणे के मजदूर तो कहीं सुने नहीं, अलवत्ता खेती करने को निश्राण करणे को बोझ भार उठाणे को फ़ज्ब

काटणे अदि कार्य करणे को तो मजदूर हैं परन्तु कर्म काटणे के मजदूर तो नहीं होते यतो प्रत्यक्ष दिखलाई है, इस तरह पोसा नहीं होता है, होता है सिर्फ वैराग्य भाव लाके काम भोगों से विरक्त होनेसे और यथार्थ श्रद्धावन्त होने से तब ही आतम कार्य की सिद्धि होती है, श्रावक के पोसा करने से आवते कर्म रुकते हैं और अशुभ कर्म क्षय होके जीव निरमल होता है उसही का नाम पोसा होता है उसही का नाम पोसा है बाकी लोभ लालच के निमित्त पोसा करने कराने से धर्म कदापि नहीं होता है, तात्पर्य पौषध लेते वक्त जो जो सावद्य जोगों के त्याग किया है वो इग्यारमां व्रत है सो ही श्रावक धर्म है और जो जो आगार रक्खा है वो अव्रत आस्रव है अव्रत सेने सेवाने और अनुमोदने में एकान्त पाप है ॥ इति ॥

अथद्वादशम् अतिथि संविभाग व्रतम्

दोहा ।

अतिथि संविभाग चौथो शिखा । ते बारमूं व्रत रसाल ॥ श्रमण निर्ग्रंथ अणगार ने । दान देवै दृग चाल ॥१॥ ते फासू अचितने सूझतो । कल्पे ते द्रव्य अनेक ॥ कल्पेते खेत्र काल मे दान दे आणि विवेक ॥२॥ जो उ दान दे मुक्ति ने कारणे । और वंछा नहिं कांय ॥ जब निपजै व्रत बारमूं । इम भाख्यो जिन-राय ॥ ३ ॥ इग्यारा व्रत वश आपरै । प्रति लाभ्यां से थाय ॥ ४ ॥ लाखां कोडां खरचिया । जीव अनन्तो वार ॥ पिण दान सुपात्र दोहिलो । ते जीव तणों

आधार ॥ ५ ॥ ए व्रत निपावा कारणे । उद्यम करै नितनेम ॥ भावे साधांरी भावना । हाथें दान देवा सूं पेम ॥ ६ ॥ आलस छोडणूं किण विधे । किण विध देणूं दान ॥ उद्यम करणों किण विधे । ते सुणों सूरत दे कान ॥ ७ ॥

॥ भावार्थ ॥

चौथा शिखाव्रत क्या है और कैसे होता है सो कहते है। इस का नाम अतिथि संविभाग है अर्थात् अतिथि को संविभाग देना परन्तु वो अतिथि कैसे होना चाहिये कि जिन्होंको देनेसे वारमा व्रत निष्पन्न हो सो कहते हैं, "समण निग्रंथ अणगार ने दान देवे दगचाल अर्थात् श्रमण तप संयम मे श्रम करैं, ग्रंथ कहिये परिग्रह ते धन धान्यादि नहि रखने वाले, और अणगार कहिये घर रहित ऐसे साधू महात्मावों को प्रासूक अचित निरदोष आहार पानी काम भोगों की अभिलाषा रहित एकान्त मुक्ति की आशासे देनेसे श्रावक के वारमां व्रत निपजता है। इग्यारा व्रत निपजाना तो अपनी हाथ की वात है जी चाहे जब निपजा सकता है परन्तु वारमाव्रत तो शुद्ध साधू मुनिराज का संयोग मिलने से और आहार पानी आदिकी शुद्ध जोगवाई होने से होता है, लाखों क्रोडों का खरच और संसारिक दान तो यह जीव अनन्ती वार किया है परन्तु सुपात्र दान देना महा दुर्लभ है सुपात्र दान से ही वारमाव्रत होता हैं इसलिये श्रावकको इस व्रत निपजाने का उद्यम करना अत्यावश्यक है हमेशा मुनिराजों की भावना दिलमें रखना और शुद्ध योगवाई मिलने से स्वहस्त द्वारा दान देना श्रावकों का कर्त्तव्य है ; आलश्य तजके किस प्रकार दान देणा और इसका उधम कैसे करना सो कहते हैं।

ढाल जीवमोह अनुकम्पा न आणिये

॥ एदेशी ॥

बारमूं व्रत छे श्रावक तणूं। तिणरो सांभल जो विस्तारजी॥ समण निग्रन्थ अणगारनें। देवो चिहूं विध शुद्ध आहारजी॥ इम व्रत निपजावे बारमूं॥ १॥ वले वस्त्र पात्र ने काम्बलो। पाय पूछणूं देवे एमजी॥ पीठ फलग सेझा नें सांथारो। देवे ओषध भेषज जेमजी॥ इम॥ २॥ इत्यादिक वस्तु कल्पै तिका। साधां नें दोधां हर्षित होयजी॥ जाणें धन दीहाड़ो धन घड़ी। बारमूं व्रत नीपनूं सोयजी॥ इम॥ ३॥ करे चिन्तवनां साधां तणी। परम देखे शुद्ध आहारजी॥ वलि भांणे वेठ भावे भावनां। व्रत धारीरो यो आचारजी॥ इम॥ ४॥ साधु आय ऊभा देखे आंगणें। विकसे सघली रोम-रायजी॥ असणादिक देवे भावसूं। घणुं मन रलियायत थाय जी॥ इम॥ ५॥ काचा पाणी सूं थाली धोवे नहीं। वले सचित न राखे पासजी॥ संघटे नहिं बैसे सचितरे। व्रत निपजावणरो हुल्लासजी॥ इम॥ ६॥ कांई काम पड़े आय सचितरो। जब पिण समता राखे विख्यातजी॥ दिश अवलोक्यां

विण साधुरी । नहिं घाले सचित में हाथ जो ॥ इम ॥ ७ ॥ कल्पै ते वस्तु पड़ी असूझती । कदे सहजें सूझती होय जी ॥ तो खप करि राखे सूझती । सचित ऊपर न मेलै कोयजी ॥ इम ॥ ८ ॥ जे जे द्रव्य जाणे छे सूझता । कल्पै ते साधूनें जाणजी ॥ तिणरी भावे निरन्तर भावना । एहवा श्रावक चतुर सुजाणजी ॥ इम ॥ ९ ॥ चित्त वित्त पात्र तीनूं तणुं । कदे आय मिलै संजोगजी ॥ जब अडलक दान दे हाथ सूं । पछे न करै पिछतावो सोगजी ॥ इम ॥ १० ॥ जे जे व्रत धारी श्रावक हुवै । ते जीमतां न जडै किमाड़ जी ॥ उववाई नें सुयगड़ा अङ्ग में । त्यांरा चाल्या उघाड़ा द्वारजी ॥ इम ॥ ११ ॥ सहिभैं उघाड़ा हुवै बारणा । जब राखे उघाड़ा तांमजी ॥ नहिं जड़ै उघाड़ा बारणा । साधां नें दान देवा कामजी ॥ इम ॥ १२ ॥ और भेष उघाड़ मांहि धसै । साधू न आवै खोल किंवार जी । तिण सूं व्रत धारी श्रावक हुवै । ते तो राखे उघाड़ा द्वारजी इम ॥ १३ ॥ सहजे आया छै घर आपणे । नीपनूं देखि शुद्ध आहारजी ॥ जब काल जाणैं गौचरी तणुं । तो वो बाट जोवै तिण वारजी ॥ इम ॥१४॥

॥ भावार्थ ॥

बारवांव्रत श्रावक का है वो कसे निपजता है सो कहते हैं —

श्रमण निग्रन्थ श्रणगार को असाण १ पाण २ खादिम३ स्वादिम ४ वस्त्र ५ पात्र ६ काम्बला ७ पंद पूंछणा ८ पीढ ९ फलग १० सेज्भा ११ संथारो १२ औषध १३ भेषज १४ इत्यादिक कल्पती वस्तु अर्थात् जो साधू को लेने जोग दोषरहित हो सो देने से बारमां व्रत निपजता है, उपरोक्त प्रासूक वस्तुवों को देके श्रावक अत्यन्त हर्षाय मान होय, विचारे कि आज का दिन और घड़ी धन्य है ऐसे सत्पुरुषों की योगवाई मिलने से मेरे बारमा व्रत हुआ, तथा जब अपने घरमें सूभता असनादि देखें तब अथवा जीमते वक्त साधू मुनिराज की भावना भावे आहार पानी आदि जो जो वस्तु साधुवों को कल्पती है उन्हें सूभनी देखे तब विचार करे कि इस वक्त यदि मुनिराजों का योग मिले तो स्वहस्त सें दान दूं तब मनका मनोरथ फलै, जीमने को बैठे तो एक दम मुख में नघालै साधुओं की राह देखे, जीमते समय सचित पानी से थाली न धोवै सचितका संघट्टा न रखे कदा उसही वक्त साधू पधार जाय तो हर्ष सहित व्रत निपजावे, साधुवों को वस्तु कल्पे सो असूभनी पड़ी होय तो वो साधुवों के लिये सूभती न करैं यदि स्वतःहो सूभती हो तब उसे सूभती रखें और उन वस्तुवों को साधू को वहराने की भावना निरंतर रखें योग मिलने से अढलक दान अर्थात जितनी वावना साधू को हो वो हर्ष सहित भरपूर देवैं, और व्रतधारी श्रावक हो वो जीमते समय द्वार के कपाट न जडें उववाई सूत्र में श्रावकों के उघाडे द्वार कहे हैं क्योंकि द्वार बंध होय तो द्वार खोलके साधू अन्दर नहीं आते हैं दूसरे भेष वाले तो द्वार खोल के अन्दर भी आहार लेनेको आ जाते हैं परन्तु साधू मुनिराज तो कपाट खोलते जडते नहीं इसलिये श्रावकों के उघाड़े द्वार कहे हैं यदि जडे हुए किवाड हो तो उन्हें साधुवों के निमित्त न खोलें अपने कार्य के निमित्त खुले तब उन्हें न जुडें और साधू मुनिराजों की भावना रखें ये व्रतधारी का आचार है।

॥ ढाल तेहिज ॥

ज्यांरे हूंसघणी छै मांहिली। पोते स्वहाथ देवा दानजी ॥ त्यांरा हृदय मे साधू बसरह्या। ते किण विध सूंके ध्यानजी ॥ इम ॥ १५ ॥ अशणादिक थाली में लोधांपछै। तुरत घाले नहिं मुख म्हांयजी ॥ दिशि अवलोके भावे भावना। जाणे साधु पधारै आयजी ॥ इम ॥१६॥ इण विधि भावना भावतां थकां। मिलै सतगुरूनों जोग वाईजी, तो उ दान दे उलट परिणामसूं। चूकै नहिं अवसर पाईजी ॥ इम॥१७॥ शक्तिसारु दान दे साधुने। पिण न करै कूड़ी मनवारजी। ठालो बादल ज्यूं गाजै नहीं। सांचै मन बोलै शुद्ध विचारजी ॥ इम ॥ १८ ॥ अडलक दान देई साधुने। पोमावै नहिं औरां पासजी ॥ गिरवो गम्भीर रहै सदा त्यांने वीर वखाण्यां तासजी ॥ इम ॥ १९ ॥ अडलक दान देणुं पातरै। नहिं जिण तिणने आसानजी ॥ दान देवारो ध्यान रहै सदा। एहवा विरलाछै बुद्धिवानजी ॥ इम ॥ २० ॥ आछी वस्तु गोप राखै नहीं। न आणें लोलपणों ने लोभजी ॥ गमती वस्तु देवै साधु ने। पिण कूड़ी न साधै सोभजी ॥ इम ॥ २१ ॥ आप खावें ते अबूतमें गिणें।

तिणसूं बंधता जाणे पाप कर्म जी॥ दान सुपात्र ने दिया। जाणे संवर निरजरा धर्मजी॥ इम ॥ २२ ॥ सुपात्र दान देवै तिण अवसरै। लेखो न करै मन म्हांयजी॥ लेखो कियांसूं तो लोभ उपजै। अडलक दान दियो नहिं जायजी॥ इम ॥ २३ ॥ लाडू घोवणादिक बहिरायतां। राखै एक धारा परिणामजी॥ व्रतधारी आघो काडै नहिं। छड़ी जोगवाई पामजी॥ इम ॥ २४ ॥ कदा बहरियां बिन पाछा फिरै। कांई आय पड्यां अन्तरायजी॥ जब पछतावो किया पुन्य बन्धे। बलि कर्म निर्जरा थायजी॥ इम॥ २५ ॥ पिछतावो कियां ही पुन्य बन्धे। तो बहिरायां हुवे लाभ अनन्तजी॥ उत्कृष्टो तीर्थंकर पद लहै। इम भाष गया भगवन्तजी॥ इम ॥ २६ ॥ सूझती वस्तु न करै असूझती। तेतो दान देवारै कामजी॥ असूझती न करै सूझती॥ बहिरावणरा आणि परिणामजी॥ इम॥ २७ ॥ जाणिने न देवै असूझतो। कारड़ो पिण बणियां कामजी॥ निर्दोष दीधी वस्तु हाथसूं। पाछी लेवारी नहिं हामजी॥ इम ॥ २८ ॥

॥ भावार्थ ॥

जिन्होंकि मुनिराज को स्वहस्तद्वारा दान देनेकी हूंस अर्थात् हर्षाभिलाषा है उन्हों के हृदय में हमेशा साधू वस रहे हैं वोह ध्यान उनके

चित्त से कैसे दूर हो सकता है उनके तो खाते पीते वक्त यही ध्यान रहता है कि इस वक्त साधू पधार जाय तो दान देऊं इसलिये श्रावक जीमते वक्त भाणें बठे तब जलदी करके साधू की भावना भायें बिना मुख में आहार न घालें राह देखते यदि साधू पधार जांय तो दान देके अत्यन्त खुश होके विचारे कि आज का दिन धन्य है सो मेरे बारमा व्रत निष्पन्न हुआ, दान देके दूसरों के पास अपनी तारीफ न करें कि मैं बडा दानेश्वरी हूं तथा साधूवों के पास अपनी नेखो भी न करे जैसे देनेका भाव तो नही और कहै कि महाराज मेरे पास आप की कल्पती वस्तुवो बोहत है जी चाहे जो लीजिये कदा साधू को चाहिये तो लेना स्वीकार करें तब हाथ धूजने लग जाय ऐसी झूंठी मनवार श्रावक को नहीं करनी चाहिये तथा अच्छी वस्तुको छिपा के खराब वस्तु भी साधू को नहीं थामना चाहिये अर्थात् अपना लोलपी पणा छोडके साधुवों को इच्छित आहार पानी आदि बहिराना सो बारमां व्रत है, सुपात्र को अडलक दान देना हरेकको आसान नही है दिल के ओछे आदमियों से या लोभी पूरुषों से सुपात्र दान नहीं दिया जाता है इसलिये श्रावकों को चाहिये कि निरदोष आहार पानी आदि चौदह प्रकार का दान मनकी उत्साह सहित गहर गम्भीर दिल से देवें, उन्हों की ही भगवन्तों ने सराहना की है शास्त्रों में कहा है शुद्ध दान देनेवाले महा दुर्लभ हैं, श्रावक स्वयं भोजन करे सो अव्रत में जानें जिससे अशुभ कर्मों का बंध और शुद्ध साधू निर्ग्रंथ को देवे उससे अशुभ कर्मों की निरजरा होके शुभ कर्म जो पुण्य है सो बंधता है और व्रत संबर धर्म होता है, तब हो तो श्रावक के हमेशा यही अभिलाषा रहती है कि मैं मुनिराजों को प्रतिलाभूं सो दिन धन्य है कदा वस्तु असूझती हो जाय और साधू बिना बहरिया ही चले जाय तब बहुत पश्चाताप करे विचार करे कि देखो मैं कैसा अभागी हूं, पश्चाताप करने से अशुभ कर्मों का नाश होके पुन्य बंधता है सो साधुवों को बहराने से तो महाफल प्राप्त होता है उत्कृष्ट भांगे तीर्थंकर पद पाता है, इसलिये

हमेशा भावना रखनी चाहिये लड्डू आदि मिष्टान तथा धोवण आदि पानी वहराते वक्त एकसा परिणाम रखना चाहिये सूझती को असूझती और असूझती वस्तू को सूझती करिक कदापि नहीं देना तथा असूझती वस्तु तो साधूवों को हरगिज किसी भी हालत में नहीं देना क्योंकि असूझता देने से तो एकान्त पाप ही होता है।

॥ ढाल तेहिज ॥

दान देवण देवावण कारणैं। कदे अतीक्रमे नहीं कालजी॥ मच्छर मान वड़ाई छोड़ने। दान देवै दूषण टालजी॥ इम॥ २९॥ आपणी वस्तु कहै पारकी। दान देवा न देवा कामजी॥ धर्म ठिकाणें झूंठ बोलै नहीं। सूंड़ै कोरी न राखै मांमजी॥ इम॥ ३०॥ इग्यारै व्रततो त्याग किया हुवे। बारमूंव्रत दोधां होयजी॥ तिणसूं कठिन काम इण व्रतरो। विरला निपजावे कोयजी॥ इम॥ ३१॥ सुपात्र दान देवै तेहने। निपजै तीन बोल अमोलजी॥ संवर निरजरा हुवै पुन्य बंधै। त्यारों अर्थ सुणं दिल खोलजी॥ इम॥ ३२॥ जे जे वस्तु वहरायां साधू ने। तिण द्रव्यरी अव्रत न रही कांयजी॥ ते व्रत संवर हुवै इण विधै। शुभ जोगां से निरजरा थायजी॥ इम॥ ३३॥ शुभ योग वर्त्यां हुवै निरजरा। शुभ जोगां से पुन्य वन्ध जालजी॥ पुन्य सहजै हुवै निरजरा किया। जिम खाखलो

हुवै गेहुं री साथजी ॥ द्रुम ॥ ३४ ॥ उत्कृष्टै परिणामां दान दे। तो उत्कृष्टी टलै कर्म कोतजी ॥ उत्कृष्टा बंधै पुन्य तेहने। वलि बंधै तीर्थंकर गोतजी ॥ द्रुम ॥ ३५ ॥ जो उणारै पुन्य उदय हुवै इण भवे। दुःख दारिद्र दूर पुलायजी ॥ ऋद्धि सम्पदा पामे अति घणी। सुख साता मे दिन जायजी ॥ द्रुम ॥ ३६ ॥ जो उदय न आवै इण भवे। तो पर भवमे शंका मत जाणजी ॥ ऊंच गोत्रादिक सुख भोगवे। इण दान तणा फल जाणजी ॥ द्रुम ॥ ३७ ॥ पुन्यरी वंछा करि देवै नहीं। समदृष्टि साधां ने दानजी ॥ देवै संवर निरजरा कारणें। पुन्यतो सहजी लागै आसानजी ॥ द्रुम ॥ ३८ ॥ अव्रत मे देतां थका। पड़ै श्रावकरे मन धरकजी ॥ ज्यांने दान दिया व्रत नीपजै। त्याने दीठां ही पामें हरखजी ॥ द्रुम ॥३९॥ काम पडै अव्रत में दानरो। जब देतो ही आवमां शर्मजी ॥ पछै करै पिछतावो तेहनूं। कांयिक ढीला पड़ै कर्मजी ॥ द्रुम ॥ ४० ॥ अव्रत मे दान दे तेहनूं। टालणरो करै उपायजी ॥ जाणें कर्म बंधै छै म्हांयरै। मोने भोगवतां दुःख दायजी ॥ द्रुम ॥ ४१ ॥ अव्रत मे दान देतां थकां। बंधै आठूं ही पाप कर्मजी ॥ सुपात्र ने दान दिया थकां। म्हारे संवर निरजरा

धर्मजी ॥ इम ॥ ४२ ॥ अव्रत में दान देवा तणूं। कोई त्याग करे मन शुद्धजी ॥ तिणरो पाप निरन्तर टालियो। तिणरी वीर वखाणी बुद्धिजी ॥ इम ॥ ४३ ॥ कुपात्र दान मोह कर्म उदै। सुपात्र दान क्षयोपशम भावजी ॥ व्रत निपजै सुपात्र दान थी। तिणरो जाणो समदृष्टि न्यायजी ॥ ४४ ॥

॥ भावार्थ ॥

पुन दान देने की विधि कहते हैं—मत्सर भाव मान बड़ाई छांडि के निरदोष दान दे अपनी वस्तु को पराये की वस्तु दान देने या न देने के निमित्त न कहै अर्थात् यह धर्म कार्य में झूंठ न बोलें, इग्यारे व्रत तो त्याग करने से और बारमां व्रत शुद्ध साधू निग्रंथ को निर्दोष दान देने से होता है इसलिये इस व्रत का निपजाना महामुश्किल है कोई विरले समझदार ही निपजा सकता है इस वास्ते इसके निपजाने की विधि स्वामी ने विस्तार पूर्वक कही है सुपात्रदान देने वाले को तीन बोल निपजते हैं प्रथम तो जो वस्तु साधू को वहराई उसकी अव्रत मिट गई सो तो व्रत हुआ तब कोई कहै सिर्फ साधूको देने से ही अव्रत क्यों मिटी और श्रावक आदि दूसरे जीवों को देने से अव्रत क्यों नहीं मिटी। उसका उत्तर यह है कि साधू के सर्वथा प्रकार अव्रत सेने सेवाने और अनुमोदने का त्याग है साधू कल्पती वस्तु भोगें सो उनके व्रत में हैं साधू आहार पानी आदि जिन आज्ञा प्रमाण करैं सो संयम यात्रा निरवाहनार्थ करते हैं जिससे महाव्रतो की पुष्टी और मुक्ति का साधन होता है निरदोष अहार पानी आदि की याचना करि के लेवैं सो तो तीसरा महाव्रत की अराधना है श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र में कहा है तथा राग द्वेष वरज के विधि पूर्वक भोगे सो अहिन्सा आदि पाचू ही महाव्रतों की पुष्टी और अराधना है इसलिये साधुवों को

देने से तो श्रावक के बारमां व्रत सबर होता है और श्रावक आदि ग्रहस्थों को देने दिलाने और अनुमोदने से अव्रतास्रव हे ग्रहस्थ आप भोगे सो भी अव्रत है भोगावें और अनुमोदें सो भी अव्रत है उववाई सुयगडा अंग आदि सूत्रों में खुलासा कहा है इस लिये सुपात्र दान देने में अव्वल तो संवर होता दूसरे साधू को वहरायें शुभ जोग वर्तें जिससे अशुभ कर्मों की निरजरा होती है, तीसरे शुभ जोग वर्तने से पुण्य बंध होता है, उत्कृष्ट भावों से दान देते उत्कृष्ट भांगे तीर्थंकर गौत्र बंधता है। इस भव में पुन्योदय होने से दुःख दारिद्र दूर होता है। ऋद्धि सम्पदा सुख साता मिलती है, कदा इस भव में पुण्य उदय न होवे तो पर भव में तो अवश्य ऊंच गौत्रादि पुण्य प्रकृतियां होवेहीगी उस पुन्योदय से अनुक्रमें भली २ योगवाइयां मिलने से सर्व कर्मों का नाश करिके सिद्ध गति प्राप्ति होती है शुद्ध दान का ऐसा फल है, परन्तु पुन्य की वान्छा करिके समदृष्टि दान न देवें सिर्फ संवर निरजरा निमित्त दान दें जिससे पुन्य तो सहज सुभाव लगते ही हैं जैसे गेहूं के साथ खाखला होता है, वैसे ही निरजरा होते वक्त शुभ योग वर्तने से पुण्य होता है, इसलिये श्रावक के सर्व व्रतधारी संयती को दान देने से अत्यन्त हर्ष होता है और अव्रत में दान देते मन धड़-कता है, अव्रत में दान देता है सो तो लौकिक व्यवहार से या शर्मा शर्मी से देता है सावद्य दान से अशुभ कर्मों का बंध जानता है सावद्य कार्य का पश्चाताप करने से कर्म ढीले अर्थात् शिथिल पड़ते हैं, कोई वैरागी श्रावक अव्रत में दान देने का शुद्ध मन से त्याग करैं तो उसके इस अव्रत का पाप निरंतर टलता है, तात्पर्य कुपात्र दान है सो मोह कर्म के उदय से है और सुपात्र दान है सो क्षयोपशम भाव है सुपात्र दान से श्रावक के बारमां व्रत निपजताहै तथा अशुभ कर्मों की निरजरा होती है इसका न्याय समदृष्टि ही जानते हैं, इस लिये सुपात्र की विधि पुनः वर्णन करते हैं।

॥ ढाल तेहिज ॥

सहिजे जागां पड़ी हुश्रे सूझती। जब जोवे साधांरी बाटजी ॥ तिणरे कर्म तणीं निरजरा हुश्रे। वले बन्धे पुन्यरा थाटजी ॥ इम ॥ ४५ ॥ बाट जोवतां साध पधारिया। सिज्झा दान दे हर्षित थायजी ॥ जाणें धन दिहाड़ो धन घड़ी। म्हारे साधु उतरिया आयजी ॥ इम ॥ ४६ ॥ सेज्या दान देई शुद्ध साधुने कोई करे प्रति संसारजी ॥ कोई बन्ध पाड़े शुद्ध गति तणूं। तेतो पामे भवजल्ल पारजी ॥ इम ॥ ४७ ॥ सिज्झा थानक दीधां साधुने। आगे तिरा जीव अनन्तजी॥ वलि तिराने तिरसी घणां। इम भाषगया। भगवंतजी ॥ इम ॥ ४८ ॥ दियां देवायां भलो जाणियां निरदोष सुपात्र दानजी ॥ व्रत निपजे दीधां वस्तु आपरी इम भाष्यो श्रीभगवानजी॥ इम ॥४६॥ पुत्र त्रियादिक। मा बापरा। परिणाम चढावे विशेषजी ॥ त्यांने दान देवा सनमुख करे। शिखावे शुद्ध विवेकजी ॥ इम ॥ ५० ॥ पुत्र त्रियादिक मा बापरा। दान देवारा रहै परिणामजी ॥ त्यांसूं हेत राखे जिन धर्मरो। शुद्ध श्रावक तिणरो नामजी ॥ इम ॥ ५१ ॥ अडलक दान देतां देखी औरने। त्यांरा पाडे नहिं परिणा-मजी ॥ कदा देणी न आवे आपसूं। तो करे तिणरा

गुण ग्रामजी ॥ इम ॥ ५२ ॥ गुण सहणी न आवै दातारना । मोते पिण दियो नहीं जायजी ॥ ये दोनूं अवगुण दूरा तजै । श्री जिनवर नुं धर्म पायजी ॥ इम ॥ ५३ ॥ औराने दान देतां देखने । कोई बरज पाड़ै अन्तरायजी ॥ ता उत्कृष्टो बांधै महा मोहणी । एहवो श्रावक न करै अन्यायजी ॥ इम ॥ ५४ ॥ कोई अन्य तीर्थी जीमे नहीं । त्यांरा ठाकुर ने बिन दीधां भोगजी ॥ नित्यबारै रसोई काडिने । पोषे जपुरा-दिक लोगजी ॥ इम ॥ ५५ ॥ त्यांनें ठीक नहीं त्यांरा देवरी । देव लेवै न लेवै भोगजी ॥ तोही राखै छै त्यांरी आस्था । नित वर्त्तावे त्यांरो जोगजी ॥ इम ॥ ५६ ॥ तो व्रतधारी शुद्ध श्रावक तणूं । धर्मसूं रग्यो छै तन मनजी ॥ ते गुरुनी भावना भायां बिना । मुखमें किम घालै अन्नजी ॥ इम ॥ ५७ ॥ कोईकांरै गुरु छै अन्य तीरथी । त्यांरी करै साचै मन टैलजी ॥ तो साधु पधार्‌यां आंगणें । त्यांनें श्रावक नहीं गिणें सहेलजी ॥ इम ॥ ५८ ॥ कोई कहै दान घणूं दिढावियो । ये तो लेवारो कियो उपायजी ॥ एहवा ऊंधा बालै शुद्धि बुद्धि बिना । पिण श्रावक न काढै बायजी ॥ इम ॥ ५९ ॥ दान देवारा परिणाम जेहना । ते तो सुण २ हर्षित

थायजी ॥ कहै व्रत निपावारी विधि। मौनें सतगुरु द्दोनी बतायजी ॥ इम ॥ ६० ॥ और व्रत कह्या देवल समां। सिखाव्रत छै सिखा समानजी ॥ त्यांमे सघला सिरै व्रत बारमूं। तिणरी बुद्धिवन्त करसी पिछाणजी ॥ इम ॥ ६१ ॥ तिण तिरै तिरसी घणा। इण दान तणो प्रतापजी ॥ तिणमें शंका मूल न आणवी। श्रीजिन मुख सुं भाष्या आपजी ॥ इम ॥ ६२ ॥ सूत्र पुराण कुरान में। पात्र दान तणूं अधिकार जी ॥ तैं पात्र कुपात्र ने ओलखो। बुद्धिवन्त काढै निस्तार जी ॥ इम ॥ ६३ ॥ वले कहि २ ने कितरा कहूं। इणदान तणा गुण ग्रामजी। क्रोड जिह्वा करि बरणव्यां। पूरा कहिणी न आवै तामजी ॥ इम ॥६४॥ जोड कीधी बारमां व्रतरी। तेतो गुदवा शहर मझार जी ॥ सम्वत् अट्ठारह बत्तीस मे। वैशाख सुद बीज मंगलवारजी ॥ इम ॥६५॥ इति ॥ स्वामी भीखन जी शोभता। जोई सूत्ररो न्यायजी ॥ भव जीवांने प्रति बोधवा बारै व्रत दिया ओलखायजी ॥ इम ॥६६॥ इति द्वादश व्रतोंकी जोड़ स्वामी श्रीभीखनजी कृत।

॥ भावार्थ ॥

अपना मकान खाली होय उस में सचितादि विखर नहीं रही होय

प्रासूक होय तव श्रावक भावना भावै कि साधू पधारे तो मैं यह सेका दान देके व्रत निपजाऊं कदा साधू पधार जायतो जायगां देके मन में अत्यन्त हर्षित होय विचार करैं कि आज का दिन और आज की घड़ी धन्य है सो मेरे ऐसी योगवाई मिली मेरे यह मकान उपभोग में आता था या अन्य अव्रती को उपभोग कराता था जिस से तो पाप लगता था अब सर्व व्रतियों के काम आरहा है सो व्रत निपज रहा है, यह दान देना महा मुश्किल है इस दान से अनन्त संसारी का प्रति संसार हो के शुद्ध गति प्राप्त होती है, सउझा दान साधुवों को देने से गतकाल में अनन्ते जीव संसारमयी समुद्र से तरे वर्तमान में तर रहे हैं और भविष्यत् काल में अनन्ते जीव तरेंगे, सुपात्रों को अपनी वस्तु देने से बारमां व्रत होना है दिलाने और अनुमोदने से निरजरा धर्म होता है ऐसा जानेके पुत्र स्त्रियां मा बाप आदि परिवार वालो को सुपात्र दान देने की विधि सिखलाना और दान देने वालों से धर्म का प्रीती रखना यह श्रावक का कर्त्तव्य है इस लिये सुपात्र दान देने वालों से धर्मराग रखना शुद्ध श्रावक उस ही का नाम है, जो कदा अपने से न देणी आवैं तो देने वालों का परिणाम शिथिल न करै उनके गुन ग्राम करने से धर्म होता है सुपात्र दान के दातार का गुन सहन न करना तथा आप न देना यह दोनूं अवगुण है श्री जिन धर्म पाके इन्हें तजें और देते हुए को अंतराय न करै अंतराय देने से महा मोहनीय कर्म बंधता है, देखो केई अन्य तीर्थी भी ऐसे नित्य नियमी है कि ठाकुरजी के भोग लगाये विना नहीं जीमते हैं अलबत्ता उनको यह मालूम तो नहीं है कि वो परमेश्वर निरंजन निराकार जोतिस्वरूपी अशरीरी भोजन करते हैं या नही परन्तु प्रतीत रखके भक्ति करते हैं तथा केई अन्यमती अपने गुरूकी सेवा सुश्रूषा भक्ति अनेक प्रकार से करते हैं तो व्रतधारी श्रावक निरलोभी निरलालची निष्परिग्रही शुद्ध साधू मुनिराजों की अशणादि चौदह प्रकार का दान निरदोष देके सेवा भक्ति अवश्य करै, यही उपदेश है, तब कोइ कहैं अपने लेनेके लिये दान को प्रशंसा बहोत की है ऐसो

उलटी बात निरबुद्धि कहै, किन्तु श्रावक तो कहै कि हमें सद्गुरुवों ने दान देने की विधि अनुग्रह करिके बताई है, क्योंकि इग्यारे व्रत तो श्रावक जी चाहे जब निपजा सकता है परन्तु बारमा व्रत सर्व व्रतों में श्रीकार धजा समान है सो तो साधू को योगवाई मिलने से ही होता है शास्त्रों में कहा है "दुल्हाउं मुधादाई" अर्थात् शुद्ध दानके दातार दुर्लभ है सूत्रमें पुरान में कुरान में सब मतों में सुपात्र दान की प्रशसा है सुपात्र दान देके अनन्ते जीव तिरें तिर रहे हैं तथा अनन्ते जीव तिरेंगे ऐसा जानके सुपात्र कुपात्र को यथार्थ पहिचान करिके सुपात्र दान देना चाहिये; यह बारमा व्रत की जोड स्वामी श्रीभीखनजी ने गुदवा शहर मे सम्वत् १८३२ मिती वैशाख सुदी ३ मगलवार को करी जिसका भावार्थ मैंने मेरी तुच्छ बुद्धि अनुसार किया है इस में कोई अशुद्धार्थ हो जिस का मुझे त्रिविध २ मिच्छामि दुक्कड है।

॥ कलश ॥

॥ चाल त्रोटक छन्द ॥

यह द्वादशूं व्रत आखिया जिन भाखिया आगम मही। तसु ढाल बंध सुजोड़ नीको स्वाम श्री भीखू कही॥ तेहनुं भावारथ जाण लह्यो कह्यो गुलाब श्रावक इम सही। धारिये दुःख टारिये श्रीकालूगणी सुपसायही॥ १॥

आपका हितेच्छु,
जौहरी गुलाबचन्द लूणिया
जयपुर

॥ अथ ९९ अतिचार ॥

दोहा ।

चौदह अतिचार ज्ञानरा। पांच समकितरा जान। साठ बार ब्रतां तणा। पन्द्रा कर्मादान ॥१॥ सलेषणानां पांच छे। ये निन्नाणूं अतिचार॥ टाले सघला भावसुं। जे पामे भवपार ॥ २ ॥

॥ ढाल ॥

म्हेतो वीर बांदणनें जावस्यां। तथा धर्म दलाली चित करै ॥ एदेसी ॥

अतिचार लागै ज्ञान ने ते गिणतां चौदह थाय हो श्रावक जन॥ जवाईधं वच्चा मेलियं। हीण अक्षर अधिक बोलाय हो॥ श्रा॥ अतिचार लागै ज्ञानने॥ श्रा॥ १॥ पद हीणो विनय हीणो करै। जोग हीण घोष हीण थाय हो॥ श्रा॥ सुट्ठु दीनं दुट्ठु पड़िच्छियं। अकाले करै सज्झायहो॥ श्रा॥ ॥ २ ॥ काले सज्झाय करै नहीं। असज्झाय मे करै सज्झाय हो॥ श्रा॥ सज्झाय वेलां आलश करै। जब ज्ञान थांरो मैलो थाय हो॥ श्रा॥ ३॥ हिव समकित नां दूषण कह्या। पांच मोटा अतिचार हो॥ श्रा॥ जाणै पिण आदरै नहीं। पालै निर अति-

चार हो ॥ श्रा ॥ अतिचार लागै समकित भणी ॥ ४ ॥ भगवन्त भाष्या ते सुणि करै। शंका कंखा विदगंछ हो ॥ श्रा ॥ कुगुरु प्रशंसा जे करै मिथ्या रंग करै मन वंछ हो ॥ श्रा ॥ अ ॥ ५ ॥ दूषण लागै व्रतां भणी। ते पांच २ अतिचार हो ॥ श्रा ॥ जाणैं पिण आदरै नही। पालै शुद्ध आचार हो ॥ श्रा ॥ अ ॥ ६ ॥ जीव बांधै मारै निरदय पणैं करै कानांदिक छवी छेद हो ॥ श्रा ॥ घणूं भार पर खेपवै। करै भात पांणीनुं विच्छेद हो ॥ श्रा ॥ अतिचार लागै व्रतां भणी ॥ ७ ॥ ज्यां ज्यां जीव मारणरा त्याग छै। त्यां त्यां जीवांरा पांच अतिचार हो ॥ श्रा ॥ ज्यां ज्या जीव मारणरो आगार छै। त्यांनें मारयां नही दोष अतिचार हो ॥ श्रा ॥ अ ॥ ८ ॥ अण विचारो कूड़ो आलदे। छानीबात प्रकाशै तेह हो ॥ श्रा ॥ मर्म भेद कूड़ी साख दे। कूड़ा लेखा करै जेह हो ॥ श्रा ॥ अति-चार दूजाव्रत नें ॥ ६ ॥ जिण २ झूंठ बोलणरा त्याग छै। तिण बोल्यां पांच अतिचार हो ॥ श्रा ॥ जिण २ झूंठ बोलणरो आगार छै। तिण बोल्यां दोष न लिगार हो ॥ श्रा ॥ अ ॥ १० ॥ चोरी वस्तु ले चोरां साझदे। वलि भांजे राजारो दाण हो ॥ श्रा ॥ कूड़ा तोला कु मापाकरै। भेल सभेल दगो दे जाण

हो ॥ श्रा ॥ अतिचार तीजा व्रतनें ॥ ११ ॥ जिण २ भांगे चोरीरा त्याग छे ॥ तिण भागे लागे अतिचार हो ॥ श्रा ॥ जिण भांगे चोरी आगार छे। तिणमे व्रत भङ्ग नाहीं लिगार हो ॥ श्रा ॥ १२ ॥ थोड़ोई काल परिग्रही अपरिग्रही थकी। गमन कीधी हुवे चाहि हो ॥श्रा॥ अनेक क्रीड़ा कीधी तेहसे। पर विवाह दीनो हुवे राय हो ॥श्रा॥ अतिचार चौथा व्रतनें ॥ १३ ॥ वलि काम भोगरी वन्छा थकां। तीव्र अभिलाषा कीधो हुवे त्याय हो ॥श्रा॥ ज्याने त्यागा त्यांरो सेवन कियां। अतिचार कह्या जिनराय हो ॥श्रा॥ श्र॥ ॥१४॥ जिण भांगे चौथोव्रत आदर्यो। ते भांगो भाग्यां अति चारहो ॥श्रा॥ जे जे भांगा छूटा राखिया। ते सेव्या नहिं दोष लिगारहो ॥श्रा॥१५॥ खेत वथु हिरण सुवण तणीं। मरयादा देवे लोपाय हो ॥श्रा॥ धन धान द्विपद चौपद वधे। कुम्भी धातु अधिक राखे रहायहो ॥श्रा॥ अतिचार पांचमांव्रतने १६ ऊंची दिशि उलंघे मर्याद थी। नीची तिरछी इम उलघाय हो ॥श्रा॥ एक दिशि दूजी में मेलवो। दिशि संख्याव्रत भंगायहो ॥श्रा॥ अतिचार छट्ठाव्रत ने ॥ १७ ॥ त्याग्या सचित द्रव्यादिक भोगवे। वलि मेल समेल करि खाय हो ॥श्रा॥ गहणा कपड़ादिक अधिका भोगवे। उपभोग

परिभोग अधिक सेवायहो ॥श्रा॥ अतिचार सातमां व्रतने ॥१८॥ इंगालि कम्मादिक जे कह्या। पनराहो कर्मादान हो ॥श्रा॥श्र॥ १९ ॥ काम कथा कुचेष्टा करै वलि बोलै मुख अविवाय हो ॥ श्रा ॥ अधिकरण जोडि करै एकठा। उपभोग परिभोग बधायहो ॥श्रा॥ अति-चार आठमां व्रतने ॥२०॥ एह पांचूं हो अनर्थं सेवियां जब लागै अतिचार हो ॥श्रा॥ अर्थें पिण सेव्यां पापछै। पिण व्रतने नहीं दोष लिगार ॥ श्रा ॥ श्र ॥ २१ ॥ मन बच कायानां जोगने। पाडवा प्रवर्ताय हो ॥ ॥श्रा॥ समाई में समता न करि हुवै। अण पूगी पारी हुवै समायहो ॥श्रा॥ २२ ॥ त्यागी वस्तु बाहर थी अणा-यलो। वलि पाछी दे मोकलायहो ॥ श्रा ॥ शब्द रूप दिखाय सानी करै। पुद्गल नाखी आपो ·जणायहो ॥श्रा॥ अतिचार दशमा व्रतने ॥२३॥ सैज्भा सथारो अपडि दुपडि लेवै। अण पूंजै पूंजै विपरीतहो ॥श्रा॥ इम उचारा दिकनौं भूमिका पौसो पालै नही रूडी रीतहो ॥ श्रा ॥ अतिचार इग्यारमां व्रतने ॥२४॥ सचित मूंक्यो ढाक्यो वहरायदे। अतिक्राम कालनूं मानहो ॥श्रा॥ आपणी वस्तु पारकी करै। वलि देवै मच्छर दानहो ॥श्रा॥ अतिचार बारमां व्रतने ॥२५॥ सूझती वस्तु करै असूझती। असूझती करै सूझती

तामहो ।।श्रा ।। दान देवा न देवा कारणें । बारमूव्रत भांगे आमहो ।। श्रा ।। श्र ।। २६ ।। एह लोक परलो-कारी बाञ्छा करै । जीवण मरणूं बञ्छे तामहो ।।श्रा।। काम भोग तणों बञ्छा करै । सलेषणा में दोष लागे आम हो ।। श्रा ।। एह अतिचार सलेखणानां कह्या ।। २७ ।। हूं चक्रिवर्त होवूंतो भलो । यह लोकरी वंछा मांहि हो ।। श्रा ।। हूं इन्द्रादिक पद्दी पायजो । ते परलोक बंछा ताहि हो ॥ श्रा।। एह अतिचार ।।२८।। जीवणूं मरणूं बञ्छा दोष छे । वलि बञ्छां कामने भोग हो ।। श्रा ॥ ये पांचूं हीं कर्तव्य पाडवा । तीनू ही करणां ने तीन जोग हो ।। श्रा ।। श्र २९ ।। सघला अतिचार भेला कियां । निश्चाणु कह्या जिन राय हो ।। श्रा ।। ते टालै सघला भावसूं । तो आराधक पद थाय हो ॥ श्रावक जन ॥ अतिचार सर्व इम जाणवा ।। ३१ ॥ इति स्वामी श्री भीषनजीकृत ।

॥ अथ पडिमांधारी की ढाल ॥

॥ श्रीजयाचार्य कृत ॥

॥ दोहा ॥

प्रत्यक्ष आरै पंच मे । भूला धारी भेख ॥ धर्म कहै अव्रत मझे । कर रह्या कूड़ी टेक ॥१॥ श्रावक

नें जीमावियां। धर्म कहै करितांण ॥ ते व्रत अव्रत नहो ओलख्यो। मिथ्या दृष्टि जाण ॥२॥ कहै पडिमां धारी श्रावक भणी। पोष्यां एकान्त धर्म॥ त्यां पडिमां धर्म न ओलख्यो। भूला अज्ञानी भ्रम ॥३॥ पडिमां तो धर्म मार्ग मुक्तिरो। अव्रत आज्ञा बार॥ निर्णय कहूं छूं तेहनों। सांभल जो विस्तार ॥४॥

या अनुकम्पा जिन आज्ञा में ॥ एदेशी ॥

पहली पडिमां में समकित शुद्ध पालै। पंच परमेश बिना नमें नाही॥ पिण सम्यक् प्रमाणें व्रत नही धार्या। ते अव्रत नही पडिमां धर्म मांहि ॥ पडिमां धार्या रो निर्णय कीजै॥ १ ॥ बीजी पडिमां में व्रत वधारै। पिण सामायक देशावगासी करै नाहीं॥ जे व्रत धार्या ते निरमल गुण छै। आगार ते नही छै धर्म माही ॥प॥ २ ॥ तीजी में समकित व्रत छै निरमल; सामाई देशावगासी पिण धारै। महिना में छः पोषा करणी न आवे। ते व्रत पडिमां अव्रत आज्ञा बारै ॥ प ॥ ३ ॥ चौथी पडिमां में पाछला गुण सघला मास में छः पोसा शुद्ध मान॥ पिण एक रातो री उपाशक पड़िमां। करणी न आवै निश्चल ध्यान ॥ प ॥ ४ ॥ पाचमी पड़िमां में पाछला गुण सघला। पिण एक रात्री री पड़िमां जाण॥ स्नान ने रात्री

भोजन त्यागै । काछ न वालै समता आवैं ॥ प ॥५॥ दिवस नुं शील रात्री नी मर्यादा । ये पांचूं बोल अधिका जाण ॥ जघन्य एक दोय तीन दिवस लागे। उत्कृष्टा पांच मास पिछाण ॥ प ॥ ६ ॥ ये दिवश नुं शील ते तो छे पड़िमां । रात्री आगार ते पड़िमां नांही । आगार तेह तो अव्रत आस्रव । अव्रत छे ते तो अधर्म मांही ॥ प ॥ ७ ॥ छट्टी पडिमां में सर्वथा शील व्रत । पाछला त्याग ते सर्व पाले ॥ सचित खावा नुं आगार ते अव्रत । उत्कृष्टी षट मास नी निहाल ॥ प ॥ ८ ॥ सातमी में पाछला गुण सघला । सचित खावारा त्यागज कीधा ॥ पिण आरम्भ नुं आगार ते अव्रत ॥ उत्कृष्टो सात मास प्रसिद्धा ॥ प ॥ ६ ॥ आठमी में आरम्भ करिवो त्याग्यो । पिण आरम्भ करावण रो आगार ॥ पाछला त्याग सघला शुद्ध पाले । उत्कृष्टा आठ मास विचार ॥ प ॥ १० ॥ नवमीं में आरम्भ करावणुं त्याग्यो । पिण तिणरे अर्थें कीधो भोगवे आहार ॥ उत्कृष्टी नवमास नी पड़िमां पाछला त्याग सहित सुख कार ॥ प ॥ ११ ॥ दशमी पड़िमां में पाछला गुण सघला । पोतारे अर्थे कीधो भोगवें नाही ॥ खुर मुंड करावे तथा सिखा राखै । उत्कृष्टी दश महिना तांई ॥ प ॥ १२ ॥

न्यातीलारें वस्तुगम्यां तिण ने पूछ्यां। जाणतो हुवै कहै जाणूं मोय ॥ न जाणतो हुवे तो नहि जाणूं। त्यारे सुखिये सुखि दुःखिये दुःखयो होय ॥ प ॥ १३ ॥ इग्यारमी में साधुरो भेष करि ने। पाछला त्याग पालै सुख दाय ॥ खुर मुंड तथा माथै लोच करावै। पिण न्यातीलारो प्रेमबंध टूटो नाय ॥ प ॥ १४ ॥ न्याती लारो पेज बंधन तिण कारण। न्यातीलाररे घररो लेवे आहार ॥ और घरारो लेणो त्यांरो ते व्रत छै। पिण न्यातीलारो आगार ते अव्रत धार ॥ प ॥ १५ ॥ पड़िमां धारी पांच में गुण ठाणों। तिणरी अत्याग रूप अव्रत अछै नांहि ॥ चौकड़ी स्युं देश व्रती कह्यो छै। इम कहै तिणरे जाव धारे मन मांहि ॥ प ॥ १६ ॥ सचित अचित सूझतो ने असूझतो। यां च्यारा री अव्रत अनादिरी दाखी। सचित असूझतो त्यागयो ते व्रत छै। बाकी आगार रह्यो ते अव्रत भाखी ॥ प ॥ १७ ॥ न्यातीला अणन्यातीलारा आहार भोगवणों। आगार ते अव्रत ठेटरी होयो ॥ अणन्या-तीलारो त्याग कियो ते व्रत छै। न्यातीलारो आगार ते अव्रत जोयो ॥ प ॥ १८ ॥ अज्ञात कुलरी साधूरे गोचरी। समवायंग उत्तराध्ययन छै। साखी ॥ पड़िमा धारी रे न्यातीलारो प्रेम बंधन तिणसूं। न्यातीलारो

लेवै ते अव्रत भाखी ॥ प ॥ १९ ॥ किण क्रोड रूपयां रो परिग्रह राख्यो । वलि स्त्री पुत्रादिक परिवार ॥ त्यांरो पेज बंधन रह्यो तेहिज अव्रत । सर्व छै तिणरा परिग्रहा मझार ॥ प ॥ २० ॥ सैंकड़ा गुमास्ता तिणरै कुमावे ।' हजारां रूपया रो नफो पिण आवे । तिणरी अवृतरो पाप लागै निरन्तर । अशुभ जोग रूंध्या तिणरो पाप न थावे ॥ प ॥ २१ ॥ तोटा नफारो तो मालिक तेहिज । सूक्ष्म पणे ममता भाव निरन्तर ॥ ये प्रत्यक्ष अवृत उघाडी दीसै । बुद्धिवंत छाण करै अभ्यन्तर ॥ प ॥ २२ ॥ लाख रूपया रो परिग्रह हूंतो । ते पोता ना मन्त्री ने दियो भोलाई ॥ पछे इग्यारै पडिमां वहै तिण वेल्यां । ते रूपया छै किणरा परिग्रहा माहीं ॥ प ॥ २३ ॥ मिटरै अवृत सहस्र नाणारी । तिणने लाखरी अव्रतरो पाप न लागै । हिव लाखरी अवृत रो पाप किणने । ए मालिक छै पडिमां धारी सागै ॥ प ॥ २४ ॥ कदा पडिमा मे तिण काल कियो तो । मिल न राखै तिणरी धणीयाप ॥ तिण धनरो धणी तो पडिमां धारी हून्तो । तिणसुं अव्रतरो तिणने कह्यो पाप ॥ प ॥ २५ ॥ तिण पडिमां धारी ने कहै पडिमां मे । जावज्जीव पंच आस्रव त्यागो । जब कहै म्हांरा भाव नहीं छै । तिण कारण आसा वंछा रही लागी

॥ प ॥ २६ ॥ उत्कृष्टो मास इग्यारा पाळै। कायासूं आस्रव सेवणरो आगार ॥ तिणसूं काया पिण छकायनूं शस्त्र। तिणरी सार संभार ते आज्ञा बार ॥ प ॥ २७ ॥ सामाइक माहि श्रावकरी आतमा अधिकरण। ते शस्त्र छकायनूं भाख्यो। सूत्र भगवतीरै सातमां शतकि। पहिले उद्देशे श्रीजिन दाख्यो ॥ प ॥ २८ ॥ सामाइक मे धन भार्यादिक थी॥ ममता भाव पेज बंधन त्हायो। आठमां शतकरै पंच मे उद्देशे। धन भार्या तिणरा हिज कह्या जिनरायो ॥ प ॥ २९ ॥ तिम पडिमां मे पिण धन भार्यादिकरी। ममता भाव पेज बन्धन जाणो। तिणसूं धन भार्यादिकरी अव्रत छै तिणनें। तिणरो पाप लागे छै निरन्तर आणो ॥ प ॥ ३० ॥ इण न्याय तिण ने कहिजे व्रताव्रती। धर्माधर्मी तिण नें कहिजे। व्रत धर्म नें अव्रत अधर्म। पिण अव्रत मे धर्म किम थापी जे ॥ प ॥ ३१ ॥ पडिमांधारी आहार करै अव्रत मे तिण नें धर्म बतावे नाहीं ॥ तो देणशाला नें धर्म किण विध होसी। दान दियो तिण अव्रत सेवण ताहि ॥ प ॥ ३२ ॥ धर्माधर्मी कहै पड़िमा धारी ने व्रताव्रती पिण तिण ने बतावै। वलि कहै तिणरै अव्रत नही रही बाकी। एहवा विकलां ने किम समझावै ॥ प ॥ ३३ ॥ व्रताव्रती कहै पिण अव्रत

न कहै । आपणी भाषारो आप अजाण ॥ कोई कहै म्हांरी माता बांभड़ी । तिण सरिखो ते पिण मूर्ख जांण ॥ प ॥ ३४ ॥ पड़िमां धारी आहार पाणी लेवै छे । कायानीं सार करै ते सावद्य व्यापारो । तिण ने पिण सावद्य जोग न श्रद्धै श्रो पिण विकलांरै पूरो अन्धारो ॥ प ॥ ३५ ॥ जो पडिमां मे सावद्य जोग नही बाकी । बलि अव्रत पिण थे तिणरै नही जाणुं । तो पडिमां मे दीक्षा, लेवण री मन हुवै तो । किसा सावद्य जोगरा करै पचखाणुं ॥ प ॥ ३६ ॥ जाव जीव सावद्य जोगरा त्याग मांहि ने ॥ दीक्षा लेतां इम करै पच खाणों इणरै लेखै सावद्य जोगरो आगार ते त्याग्यो । समझोरे समझो थे मूढ़ अयाणों ॥ प ॥३७॥ पडिमां २ करि रह्या मूरख ॥ ते पडिमां तो छे श्री जिनधर्म ॥ जे पडिमा आदरतां अव्रत रहि छै ते सेव्यां सेवायां बन्धसी कर्म ॥ प ॥ ३८ ॥ प्रत्याख्यानी चौकडी रहि श्रावकरै । तिण चौकडी ने कोई अव्रत जाणैं । आप छांदै ऊधो उटका मेलै । पीपल बांधी मूरख ज्यूं ताणै ॥ प ॥ ३९ ॥ अनन्तानुबन्धी पहिलै गुण ठाणै । अप्रत्याख्यानी चौथै गुण ठाणों । प्रत्याख्यानी पांच मे रही बाकी । छट्ठा गुण ठाणाथकी संज्वल जाणों ॥ प ॥ ४० ॥ चौकडी ने अव्रत कहै

त्यांरे लेखे। साधू भी पिण संज्वल की रही सोय। चौकडी खपावे तेहिज व्रत श्रद्धे। तो चौथे गुणठाणें व्रताव्रती होय ॥ प ॥ ४१ ॥ संज्वलनूं लोभ दशमें गुण ठाणें। तिण लेखे व्रताव्रती त्यांनेंहिज कहिजे ॥ जो साधुनें सर्व व्रती मांहि घाले तो। चौकडीनूं अव्रत नांहि थापिजे ॥ प ॥ ४२ ॥ चौकडी तो छे कषाय आस्रव। तिणने अव्रत आस्रव कहे किणन्याय ॥ कषाय आस्रव ने अव्रत आस्रव। जुआ २ कह्या जिन-राय ॥ प ॥ ४३ ॥ मिथ्यात अव्रत प्रमाद कषाय। जोग आस्रव समवायंग पंचम ठाणें। येतो अव्रत आस्रव बीजो कह्यो जिन। कषाय आस्रव चौथो जाण॥ प ॥ ४४ ॥ चौकडी तो चौथो आस्रव तिण ने। अव्रत कहे मूढ बिना विचार ॥ अव्रत तो छे दूजो आस्रव। समझोरे समझो थे मूढ गिमार ॥ प ॥ ४५ ॥ सोला ही कषाय छे कषाय आस्रव। बारा ने कषाय आस्रव बतावे ॥ च्यार कषाय ने कहे अव्रत आस्रव। गालारा गोला घड २ चलावे ॥ प ॥ ४६ ॥ कषायरा तो त्याग किया नही होवे। एहना कर्म घटयां गुण प्रगटे उदारो ॥ अव्रतरा त्याग किया हुवे व्रती। तिणसूं कषायने अव्रत आस्रव न्यारो ॥ प ॥ ४७ ॥ इम सांभल उत्तम नर नारी। चौकडी ने अव्रत मत जाणों ॥ पडिमां

धारी रे अव्रत आहारादिकरो । प्रेज बन्धण न्यातीलारो पिछाणों ॥ प ॥ ४८ ॥ पडिमां धारीने समण भूये कह्यो छे । ते पिण देश थी उपमा जाणों ॥ अन्तगढ दशा मे कह्यो द्वारका ने । प्रत्यक्ष देव लोक भूया पिछाणो ॥ प ॥ ४९ ॥ जिन नहिं पिण जिनवर सरिषा। थेवरा ने कह्या उववाई मांही ॥ अनन्त गुण फेर त्यारा ज्ञानरे मांहीं । पिण देश थको उपमा दीधी बताई ॥ प ॥ ५० ॥ चक्रिवरतरा अश्वरतन ने । चमारे लिखे कह्यो साधु सरीसो ॥ जम्बू द्वीप पन्नती मे श्रीजिन भाख्यो । ए पिण देश थी उपमा दीसो ॥ प ॥ ५१ ॥ तिम पडिमां धारी ने कह्यो साधु सरीखो । ते पिण देश थी उपमा जाणो ॥ पडिमां बिचे तो संथारो अधिक छे । ते संथारा मे पिण ग्रहस्थ पिछणों ॥ प॥५२॥ उपासगदशा मे कह्यो गौतमने । आनन्द श्रावक संथारा माह्यो ॥ हूं ग्रस्थावास बसतो ग्रहस्थ छूं । मोनें इतनुं अवधि ज्ञान ऊपनो आयो ॥ प ५३ ॥ संथारा में पिण ग्रहस्थ कहिजे । तो पडिमां में ग्रहस्थ न कहैकिण लेख ॥ इण न्याय पडिमांधारीनें ग्रहस्थ कहिजे। तिणरो खाणु पीणों अव्रत मे देख ॥ प ॥५४॥ ग्रहस्थरी वैयावच करै करावै अनुमोदे तो साधूनें वीर कह्यो अणाचार ॥ दशवैकालिकरे तीजे अध्ययनें । तो ग्रहस्थ नें पिण

धर्म नहीं छै लिगार ॥ प ॥ ५५ ॥ इक्यावन बोल सेव्यां अणाचार साधू नें। तो ग्रहस्थ सेवै तिण में पाप कर्म ॥ ज्यूं ग्रहस्थरी वैयावच अणाचार साधू नें। ग्रहस्थ नें किण विध होसी धर्म ॥ प ॥ ५६ ॥ ग्रहस्थरी वैयावच अणाचार मे कही जिन। तो पडिमां धारी पिण ग्रहस्थी जाणूं ॥ तिणनें असणादिक देवै तो व्यावच। तिण मे धर्म किहां थी होसी रे अयाणूं ॥ प ॥ ५७ ॥ ग्रहस्थ ने दान दीधां अनुमोदां ॥ साधु ने प्रायश्चित आवे चौमासी ॥ निशीथ रै पंदरमें उद्देशे भाष्यो। तो ग्रहस्थ ने धर्म किण विध थासी ॥ प ॥ ५८ ॥ तो पडिमां धारी ने पिण ग्रहस्थ कहीजे। तिण दान ने साधु अनुमोदे तो दण्ड आवै ॥ तो देवण वाला ने धर्म किम होसी। बुद्धिवन्त सूत नूं न्याय मिलावै ॥ प ॥ ५९ ॥ श्रावकरो खाणों पीणों सर्व अव्रत में। सुयगड़ा अंग अठार में साखी ॥ वलि सूत्र उववाईरै प्रश्न बीस में। ते अव्रत सेव्यां कहे धर्म अनाखी ॥ प ॥ ६० ॥ अव्रत ने भाव शस्त्र कह्यो छै। सूत्र ठाणा अंग रै दश में ठाणैं। ते अव्रत सेयां सेवायां। धर्म पुन्य अज्ञानी जाणें ॥ ६१ ॥ पडिमां धारी ने तो कह्यो बाल पण्डित। वलि व्रता व्रती तिण ने कहिजे ॥ धर्माधर्मी पिण कह्यो छै तिण

ने । बुद्धिवन्त न्याय विचारी लीजे ॥ प ॥ ६२ ॥ अधर्मीरे विषे रह्यो असंजती । तिण अधर्म ने कियो अंगीकार ॥ धर्मी नैं विषै रह्यो संजमी । ते धर्म आदरो नैं बिचरै उदार ॥ प ॥ ६३ ॥ धर्माधर्मी में रह्यो संजतासंजती । तिण धर्म अधर्म कियो अंगीकार ॥ सूत्र भगवतीरै सतरमें शतकै । पहिले उद्देश कह्यो विस्तार ॥ प ॥ ६४ ॥ व्रत ते धर्म अधर्म अव्रत ते । अव्रत सेवायां धर्म न होय ॥ पडिमां धारी नें श्रमण भूए कह्यो छै । ते देश थकी ओपमां अवलोय ॥ प ॥ ६५ ॥ सघला ही भेला करै तो । एक साधूरै तुल्य न आवै ॥ उत्ताध्ययन पंचम अध्ययने । तो पडिमां धारी साधू किम थावे ॥ ६६ ॥ वलि पोसा में सावद्यरो आगार न अछै । ये पिण विकलारै पूरो अन्धारो ॥ सामायक में आत्मां शस्त्र कहिजे । तिम पोसा में पिण शस्त्र विचारो ॥ प ॥ ६७ ॥ वलि यतन करै गहणा वस्त्र कायारा । ते पिण सावद्य जोग प्रसिद्धा । सर्व सावद्य जोगरा त्याग साधां रै । इण सर्व सावद्यरा त्याग न कीधा ॥ प ॥ ६८ ॥ वलि पुत्र न्यातीला परिग्रह से । ममत्व भाव पेज बंधन पूरो ॥ बादर पणों त्यांग्यां ते पाप टलियो । पिण सूक्ष्म पणों तो न कियो दूरो ॥ प ॥ ६९ ॥ छः पोसा मास में करै

कोई श्रावक । एक वर्षरा बहोत्तर थायो । तामत्तरमूं पोसो सम्वतसरीनूं । यां दिनां रो व्याज लेवे किण न्यायो ॥ प ॥ ७० ॥ सैंकडां गुमास्ताकमावे तिणरै । इतरा दिनांरो नफो आवै घर मझारो ॥ तो त्यांरो पिण तेहिज मालिक छै । इण लेखे सूक्षमपणो रह्यो आगारो ॥ प ॥ ७१ ॥ इमहिज आगार पड़िमां धारी ते पिण । आगार में धर्म मूल म जाणों ॥ पड़िमां ते बव्रत आगार ते अव्रत । यां दोयां ने रूडी रीत पिछाणों ॥ प ॥ ७२ ॥ इम सांभल उत्तम नर नारी । अव्रत सेयां धर्म मे थापो ॥ धर्मरी आज्ञा देवे तीर्थंकर । अव्रतरी आज्ञा न देवे जिन आपो ॥ प ॥ ७३ ॥ पड़िमां धारी री अव्रत उलखावन । जोड़ कीधी पाली शहर संझारो ॥ सम्वत् अठारह ने वर्ष चोराणुवे । भादवा विद एकम गुरुवार ॥ प ॥ ७४ ॥

॥ अथ तीन मनोरथ ॥

॥ दोहा ॥

प्रणमुं अरिहन्त सिद्ध वलि आचारज उवझाय ।
साधु सकल पद वन्दतां आनन्द मङ्गल थाय ॥१॥
श्रीजिनवर स्वमुख थकी तीजा अङ्ग मझार ।
तीजे ठाणें आखिया तीन मनोरथ सार ॥ २ ॥

श्रावक ब्रत धारक जिके चिन्तवतां सुखकार ॥
कर्म महा अघ निरजरै पामैं भव नों पार ॥ ३ ॥

॥ ढाल ॥

भाखे कृष्ण मुरार, धृकार संसार नेरे ॥ एदेशी ॥

प्रथम मनोरथ मांहि, श्रावक इम चिन्तवैरे। ए आरम्भ दुःख दाय, परिग्रह थो हुवेरे ॥ १ ॥ महा अनर्थ नुं मूल, परिग्रह जिन कह्योरे। किंचित ने वलि स्थूल, पंच भेदे ग्रह्योरे ॥ २ ॥ खेतु वथु दिक जाण, हिरण्य सुवर्ण सहीरे। कुम्भिधातु धन धान, द्विपद चोपद मयीरे ॥ ३ ॥ यथा शक्ति प्रमाण, त्याग उपरान्त हो। पंचम ब्रत गुण खान। करण जोगवन्त हो ॥ ४ ॥ जे राख्यो आगार, ते अब्रत द्वार है। देयां देवायां तार पाप संचार है ॥ ५ ॥ सचित अचित जे बस्तु, आहार ने पाणियां सावद्य कार्य समस्त, भोगायां भलो जाणियां ॥ ६ ॥ हिन्सा हुवे षटकाय, तणों ग्रहवास मे। जिन मुनि आण न ताय; धर्म नहीं जास में ॥ ७ ॥ आरम्भ परिग्रह एह, कुगति दातार है। क्रोध मान माया लोभ, तणुं कारण हार है ॥ ८ ॥ संजम समकित कल्प, तरु नों भंजनूं। महा मन्द बुद्धि अज्ञान, तणों मन रंजनूं ॥ ९ ॥ मांठी

लेश्या होय, आर्त रौद्र ध्यान में। न्याय न सूझै कोय। लिप्त धनवान ने ॥ १० ॥ सुमति शुचि सौभाग्य विनासण एह हो। जन्म मरण भय अथाग, हुवै परिग्रह थकी ॥ ११ ॥ कड़वा कर्म विपाक, तणों हेतु सधै ॥ सींचै तृष्णा बेल, विषय कुन्द्री बधै ॥ १२ ॥ दारुण कर्कस दुःख वेदन असराल हो। कूड़ कपट परपंच करै विकराल हो ॥ १३ ॥ कुण सरीषो नहिं मोह पास, प्रति बन्ध है। स्नेह राग करि जास, मूर्छा अंध है ॥ १४ ॥ दान कुपात्र दुरगति दायक जिन कहै। परिग्रह थी दैनाय ते थी शिव किम लहै ॥ १५ ॥ घणां कालनों प्रीत, विनासै स्यात मैं कुल मर्यादनो रीत, छाड़ै बलि न्याति में ॥ १६ ॥ एहवो आरम्भ परिग्रह, जे दिन त्याग स्यूं। थासी ते दिन धन्य अन्तस वैराग्य स्युं ॥ १७ ॥ बाह्य अभ्यन्तर ग्रन्थ तणी मूरछा तजूं। प्रगटे भल रवि तेह, नाम प्रभु नूं भजूं ॥ १८ ॥

॥ दोहा ॥

दूजो मनोरथ चिन्तवै, श्रावक जे व्रत धार।
तन धन जोबन कारमूं, विणशंता नहिं वार ॥१॥
मात पिता बंधव त्रिया, पुत्रादिक परिवार।
स्वारथ लग सहुको सगा, सही संसार असार ॥२॥

ग्रह वासे हिवडां वसूं , चारित मोह जे कर्म ।
चय उपशमियां थी कहा, लेस्यूं चारित्र धर्म ॥३॥

॥ ढाल ॥

वैरागे मन वालियो तथा कृष्ण भावे रूडी भावना एदेशी ।

धन २ संजम धर मुनि । त्याग्यो ते संसार ॥ पंच महाव्रत धारका । पाले पंच आचार ॥ धन २ संजम धर मुनि ॥ १ ॥ श्री जिन आणां बाहिरो । सावद्य कारज ताय ॥ नहिं आदेश दे तेहनूं । मौन धारै मुनिराय ॥ धन ॥ २ ॥ दश विध यति धर्म धारियो । यति नाम कहिवाय ॥ जीत्या विषय इन्द्रि-यां तणी ।, द्वितीय अर्थ सुख दाय ॥ धन २ ॥ ३ ॥ दोष वयांलीस टासकै । ले भिक्षू शुद्ध आहार ॥ कह्यो भिक्षू ए गुण थकी। भेदे कर्म अपार ॥ धन ॥ २ ॥ ४ ॥ साधे शिव मग साधनां । साधु महागुण खान ॥ द्वादश भेदे तप करै । तपसी नाम बखान ॥ धन २ ॥ ५ ॥ मतहणों २ जीवने । दे उपदेश महन्त ॥ माहण महा गुण आगला । शान्तिभाव ते शंत ॥ धन २ ॥ ॥ ६ ॥ कल्याण कारी ते भणीं । कल्याणिक मुनि नाम ॥ विघ्नोपशम कारी पणें । मंगलीक अभिराम ॥ धन २ ॥ ७ ॥ धर्मोपदेशक गुण थको । पूजनीक तसु पाय ॥ तीन लोकना अधपति । धर्म देव मुनिराय ॥

धन २ ॥ ८ ॥ चित्त परसन दरशन तसु । चैत्य सदा सुख कार ॥ नव विध पाले ब्रह्म क्रया । बलिहारी ब्रह्मचार ॥ धन २ ॥९॥ जन्म सफल कियो महा ऋषी । षट काया प्रतिपाल ॥ भवसागर में डूबतां । जिहाज समान दयाल ॥ २ धन ॥ १० ॥ स्नेह पास नहिं फीहसूं । सम्वेगी बैराग ॥ ग्रंथी त्याग निग्रंथ है । महकत सुयश अथाग ॥ धन २ ॥ ११ ॥ शुद्ध क्रया मे श्रम करै । श्रमण कहिजे तेह ॥ योग विमल साधे सदा । तिणसुं योगी कहेह ॥ धन २ ॥ १२ ॥ आर्जव २ भाव थी । मार्द्दव २ भाव ॥ शौच शुची क्रयाभली । करता मुक्ति उपाय ॥ धन २ ॥ १३ ॥ धर्म विणज विणजै सदा । सार्थ वाह सुविचार ॥ कर्म कटक दल जीतवा । सेनापति व्रत धार ॥ धन २ ॥ १४ ॥ मन वच काया गोपवे । सुमति पंच प्रकार ॥ इन्द्रादिक समुख करी । न लहै गुणनों पार ॥ धन २ ॥ १५ ॥ सवला इकवीस दोष जे । टालै ते भल रीत ॥ तीन तीस आशातनां करै नहिं सुविनीत ॥ धन २ ॥ १६ ॥ आचारज उवज्झायरी । व्यावच से धर प्यार ॥ तपसी लघु पुन ग्लानने । वस्त्रादिक दे आहार ॥ धन २ ॥ १७ ॥ भव भ्रम भमता जीवनें । तारण तरण समान ॥ गहन कांतार संसार थी । ल्यावे शिव मग

स्थान ॥ धन २ ॥ १८ ॥ चन्द्र तणीं पर निरमला । तम मिथ्या मति नाश ॥ अडिग अमर गिर सारिषा। रविवत् ज्ञान प्रकाश ॥ धन २ ॥ १९ ॥ जिन भाषित दाषित सदा । साधु श्रावक नुं धर्म ॥ अव्रत विष सम लेखवी । पाले क्रया कर्म ॥ धन २ ॥ २० ॥ आतम भावे विचरता । ध्यावे निज ध्येय ध्यान ॥ अकरता पद परिणमें ॥ धन २ ते गुणवान ॥ धन २ ॥ २१ ॥ निन्दत वंदत सम पणीं । राग द्वेष नहिं होय ॥ जश अपजश जीवण मरण में हर्ष सोग नहिं कोय ॥ धन २ ॥२२॥ सफल जमारो धन घड़ी। भावे जाग्रत जेह ॥ अप्रतिबन्ध वायु परे। तजी कुटम्ब थी नेह ॥ धन २ ॥ २३ ॥ चारित्र मोह क्षयोप शम्यां । हूं एहवो व्रत धार ॥ थास्यूं ते दिन धन घड़ी । आनन्द हर्ष अपार ॥ धन २ ॥ २४ ॥

॥ दोहा ॥

तीजो मनोरथ चिन्तवै, मनमें श्रावक एम ।
संजम ग्रहि शुभ भावसें, लिया निभावूं नेम ।१।
ये संसार अगाध मे, भमियों काल अनन्त ।
बहु षटरस भोजन किया, समता नहिं उपजंत ।२।
चरण सहित अणसण करूं पादोप गमन संसार ।
अवसर मरण तणीं वलि, होय जो शरणा च्यार ।३।

॥ ढाल ॥

रहो २ राजेसरा केशरिया तथा हूं तुज आगल सो कहूं कन्हैया एदेशी।

शुभाशुभ पुद्गल फरसिया ॥ गुणवंता ॥ षटद्रव्य दिशनूं आहार हो ॥ गु ॥ श्रावक ॥ दुगन्ध सुगन्ध फरस आठहो ॥ गु ॥ पंच वरण रस धारहो ॥ गुण- वंता श्रावक ॥ भावै एहवी भावनां गुणवंता ॥१॥ मोटी माया मोहणी ॥ गु ॥ खोटी पुद्गल पर्याय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ उदय थयां दुःख नीपजै ॥ गु ॥ वेदै चेतन रायहो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावै ॥ २ ॥ प्रकृति अठवीसें करी ॥ गु ॥ क्रोध मान माया लोभहो ॥ गु ॥ चिहूं २ भेदैं संचरै ॥ गु ॥ पामैं चेतन खोभहो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावै ॥ ३ ॥ हास्य रत्तारत्त भय वलि ॥ गु ॥ सोग दुगंछा थाय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ स्त्री पुरुष नपुंशक तिहु ॥ गु ॥ मोह चारित कहिवाय ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावै ॥ ४ ॥ दरशन मोह उदय थकी ॥ गु ॥ मिच्छत समकित जानहो ॥ गु ॥ श्रा ॥ मिश्र मोहनी ये तिहुं ॥ गु ॥ दाबै निजगुण खान हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावै ॥ ५ ॥ असाता वेदनोदय ॥ गु ॥ भूख तृषादि पिडंत हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ लाभ भोगान्तर क्षयोप- शम्यां ॥ गु ॥ भोग शक्ति पावंत हा ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावै

॥ ६ ॥ नाम उदय थी मह्य मिले ॥ गु ॥ गमता अणागमता भोग हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ विविध प्रकारे भोगवे ॥ गु ॥ शरीरादि रोग्य आरोग्य हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावे ॥ ७ ॥ बार अनन्त सुख दुःख लह्या ॥ गु ॥ भव भव भमियो जीव हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ स्वर्ग नरक पुन मनुष्य मे ॥ गु ॥ तिर्यंच गतिमे अतीव हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावे ॥ ८ ॥ अनन्त मेरु सम आहारिया ॥ गु ॥ अनंत पुद्गल पर्याय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ इक इक लोकाकाश मे ॥ गु ॥ बार अनंत कहिवाय हो ॥ गु ॥ श्र ॥ भावे ॥ ९ ॥ भोजन किया इण आत्मा ॥ गु ॥ बहु मूल्यनों तंत हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ इम जांणी अणशण करै ॥ गु ॥ छेहलै अवसर संत हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावै ॥ १० ॥ अष्टादश जो पापनां ॥ गु ॥ थानक प्रने आलोय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ निन्दै दुकृत जे थया ॥ गु ॥ सल्य रहित सहुकोय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावे ॥ ११ ॥ लाख चौरासी योनि नें ॥ गु ॥ वारम्वार खमाय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ राग द्वेष तज सहु थकी ॥ गु ॥ हर्ष सोग नही कांय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावे ॥ १२ ॥ च्यार प्रकार आहार जे ॥ गु ॥ त्यागे ममता रहित हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ पंच आस्रव पचखी करी ॥ गु ॥ पादोपगमन सहित हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावे ॥ १३ ॥ जङ्गम स्थावर सम्पति ॥ गु ॥ द्विपद

चौपद वोसराय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ अरिहन्त सिद्ध साधु ध्यान थी ॥ गु ॥ शिवगति नेड़ी थाय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ ॥ भावे ॥ ॥ १४ ॥ यह लोक पर लोकनी ॥ गु ॥ जिवितव्य मर्ण सधीर हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ आशा नहो काम भोगरी ॥ गु ॥ सम परिणाम सुधीर हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावे ॥ १५ ॥ अन्त समां में एहवो ॥ गु ॥ पण्डित मरण जे थाय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ मनरा मनोरथ जदि फले ॥ गु ॥ आनन्द हर्ष सवाय हो ॥ गु ॥श्रा॥ भावे ॥ १६ ॥ धन्य दिवस धन्य ते घड़ी ॥ गु ॥ आराधक पद पाय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ अल्प भवारे आंतरे ॥ गु ॥ सिद्धगति में ते जाय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावे ॥ १७ ॥ श्री भिक्षु गुण आगला ॥ गु ॥ प्रगट बतायो राह हो ॥ गु ॥ जिन धर्म जिन आणा महो ॥ गु॥ आज्ञा बाहर नाहि हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावे ॥ १८ ॥ भारीमाल गणी तस पटे ॥ गु ॥ तृतीय तख्त ऋषराय हो ॥ गु ॥श्रा ॥ जय वर पट तूर्य सूर्य सा ॥ गु ॥ पंचम् मघवा कहवाय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावे ॥ १९ ॥ माणक माणक सारिषा ॥ वर्तमान गच्छ स्थम्भ हो ॥ गु॥ श्रा ॥ जामे डाल शशि भला ॥ गु ॥ भविजन निरख अचम्भ हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावे ॥ २० ॥ उगणीसय पैंसट वलि ॥गु॥ मिगसर सित पख पेख हो ॥ गु ॥श्रा॥ श्रावक गुलाब

कहै भलैं ॥ गु ॥ आनन्द हर्ष विशेख हो ॥ गु ॥ श्रावक ॥ भावै एहवी भावना गुणवंता ॥ २१ ॥

॥ कलश ॥ गीतक छंद ॥

इमतथा मनोरथ चिन्तवै जे श्रविक नित प्रते जाणो हो ॥ अघ राशि कर्म विनाश थावै पावै पद निर्वाण हों ॥ गणी डालचन्द दिनन्द सम मम गुरू तास पसाय हो ॥ कहै श्रमणोपासक गुलाबचन्द आनन्द हर्ष अथाय हों ॥ १ ॥

इति तीनमनोरथम् ॥

अथ दशविधि श्रावक आराधना ।

॥ दोहा ॥

श्री अरिहन्तादिकसहु । पांचू पद सुखकार ॥
मन वचनें काया करी । करू तसु नमस्कार ॥ १ ॥
अरिहन्त सिद्ध साहु वलि । केवली भाषित धर्म ॥
ये च्यारू शरणां थकी । पामैं शिव सुख परम ॥ २ ॥
श्रावक नें वलि श्राविका । व्रत धारक हुवै जेह ॥
केवली भाषित धर्म मे । राखे नहीं सन्देह ॥ ३ ॥
लिया व्रत पालै वलि । श्रीजिन मति सूं प्यार ॥
उपसर्ग थी चल चित्त नहीं । लापै नही गुणकार ॥ ४ ॥

कर्म योग थी किण समैं । लागै दोष तिंवार ॥
गुरु मुख प्रायश्चित लेकरी । दण्ड करै अङ्गीकार ॥५॥
मुनि आलोवै दश विधै । आराधन सुखकार ॥
तिणपर श्रावक पडिक्कमै । समकित व्रत अणाचार ।५।
आराधना जयाचाय कृत । जोड़ पुरातन जान ॥
तिण अनुसारे मैं कहूं । सुणिजो चतुर सुजान ॥७॥

॥ ढाळ प्रथम ॥

॥ वेदक जग विरला ॥ एदेशी ॥

॥ श्रावक गुण रसिया ॥ ए आंकडी ॥

श्रीजिन धर्म माहि जे रसिया ॥ त्यारै देव गुरु दिल वसियारे ॥ श्रावक गुण रसिया ॥ हाड बलि जे हाड नो मीझो ॥ धर्म थकी रहै भीजोरे ॥ श्रावक गुण रसिया ॥१॥ कुगुरु कुदेवनो अंछे न सेवा। धीर वीर गुण गेहवारे ॥ श्रा ॥ धर्म मैं दृढ रहै नित-मेवा ॥ अडिग है सुरगिर जेहवारे ॥ श्रा ॥ २ ॥ व्रत पच्चखाण सुधा जे पालै । निज आतम उज्वालैरे ॥ श्रा ॥ अतिक्रम व्यतिक्रम नांहि संभालै । अतिचार अणाचार टालैरे ॥ श्रा ॥ ३ ॥ कर्म योग दोष लागै किंवारे । तो डंड करै अङ्गीकाररे ॥ श्रा ॥ विहुंटक आलोयणा लेवै । पक्खी दिन तो अवश लेवरे ॥ श्रा ॥

॥ ४ ॥ चौमासी नहीं चूके लिगार। शुद्ध परणिाम सुविचाररे ॥ श्रा ॥ पर्व छमच्छर आवै जिंवारै ॥ पोषध अष्ट पोहर धारेरे ॥ श्रा ॥ ५ ॥ ध्यान करो शुभ भावना भावे। लखचोरासी योनि खमावेरे ॥ श्रा ॥ प्रमाद छांडी निज ध्येय ध्यावे। आराधक पद पावेरे ॥ श्रा ॥ ॥ ६ ॥ प्रत संसारी फुन हलु करमी। जगवल्लभ प्रिय धर्मीरे ॥ श्रा ॥ आलोयण किम करत उदार। आखुं ते अधिकाररे ॥ श्रा ॥ ७ ॥ समकित रतन जतन थी राखे। न हुवे दुःख शिव सुख चाखेरे ॥ श्रा ॥ जिम कर्दम थी पङ्कज न्यारो। तिम संसार मझारोरे ॥ श्रा ॥ ८ ॥ लूखे परिणाम वसै घरवासा। राखै छांडणारी आशारे ॥ श्रा ॥ इण भव परभव मे सुख पावे। ढाल प्रथम ये गावेरे ॥ श्रावक गुण रसिया ॥ ९ ॥

॥ दोहा ॥

प्रथम द्वार आलोयणा। द्वितीय व्रत आरोप ॥
तृतीय जीव खमायवा। शुद्ध मनथी तज कोप ॥ १ ॥
चौथे पापज परहरै। पंचमे शरणां च्यार ॥
छट्ठे दुक्रत निन्दवा। सप्तम सुक्रत सार ॥ २ ॥
भावे रूडी भावना। अष्टम द्वार मझार ॥
नवमे अणशण चित धरै। दशम सुमरै नवकार ॥ ३ ॥

॥ ढाल ॥

(चौपाई नींदेशी)

सुणिये हिव प्रथम द्वार । तिणमें आलवणां अधिकार ॥ ज्ञान दरशण चारित तपसार । पडिक्कमे व्रत अणाचार ॥ १ ॥ श्रीजिनवर वचन उदार । सांचा श्रद्धया न हुवै किणवार ॥ तसु राखी नहीं प्रतीत । रुचिया न हुवै सुवदीत ॥२॥ अक्षर दीर्घ लघु बोलंतां । आलस करि अर्थ खोलंतां ॥ पद हीणा कह्या हुवै कोय । लेऊं मिच्छामि दुक्कडं सोय ॥३॥ काम विनय दिक आठ प्रकार । भणवै जे ज्ञान आचार ॥ विनय रहित भणयों हुवैज्ञान । तसु मिच्छामि दुक्कडं जान ॥४॥ पाठ अर्थ विरुद्ध जे कीनो । मिथ्या अर्थ सांचो कहदीनो ॥ कीधी ज्ञान आशातनां कोय । थावो मिच्छामि दोक्कडं मोय ॥ ५ ॥ भाजन बिन ज्ञान भणायो । सांचा अर्थ झूठो दरशायो ॥ सूत्र विरुद्ध प्ररूपणां कीधी । लेऊं आलोवणा तसु सीधी ॥ ६ ॥ पाखण्डियांरा वचन सुहाया । सूत्रा मे गपोड़ा बताया ॥ शङ्का पाडी हुवै दूजारै । लेऊं मिच्छामि दुक्कडं सार ॥ ७ ॥ व्याख्यान-आदिकरै म्हांय । सुणतांरै दीधी अन्तराय ॥ क्रोध वशथी विवध प्रकार । भाषा बोली बिना विचार ॥८॥

पांच ज्ञान निन्दविया सोय। वलि गोपविया हुवै काय ॥ निन्दा ज्ञानी तणीं करी जेह ॥ थावो मिच्छामि दोक्कड तेह ॥ ९ ॥ इम दरशननां अतिचार। आल-वणा करूं तसु सार ॥ आठ गुण जे सम्यक् प्रकार। धास्या न हुवै विनयं विचार ॥ १० ॥ कुगुरु कुदेवांरी ताण। प्रशंसा करी हुवे जाण ॥ वलि सासता परिचा मे रक्त। करी हुवै त्यांरी भक्त ॥ ११ ॥ जीवा-जीव अजीव नें जीव। धर्म अधर्माधर्म अतीव ॥ साहु असाहु साहु नें असाध। मार्ग कुमार्ग इम हिज लाध ॥ १२ ॥ सोल वाला नें अमोच गयो। हांसी स्वपर-वसथी कह्यो। ए सर्व वालांरी सोय। थावो मिच्छामि दुक्कडं सोय ॥ १३ ॥ सूत्र साधु अनें छकाय। पुन सिद्ध संसारी म्हांय ॥ शङ्का राखी हुवै किण वार। होज्यो मिच्छामि दोक्कड सार ॥ १४ ॥ गहन बातां आगम मे आई। सांभल नें लेखो लगाई। विपरीत समझस-मझाई। लेऊं मिच्छामि दुक्कडं गाई ॥ १५ ॥ कह्या साधू साध्वी जान। एकम पूनम चंद समान ॥ अनन्त गुण फेर सजम मांहि। त्यामे शङ्का राखी हुवै काहि ॥ १६ ॥ किञ्चित दोष लगावता देखी। संजम श्रद्धया न हुवै धरि सेखी ॥ पर पूठ निन्दा करी कोय थावो मिच्छामि दुक्कडं सोय ॥ १७ ॥ कारडी प्रज्ञतो

किणीरी जांणी। चारित मे शङ्का आंणी॥ थयो गण अपाराठो किवार। तेऊं मिच्छामि दुक्कडं धार ॥ १८ ॥ गणिनाथ नां अवगुण गाया। वलि गणथी कलुष भाव आया॥ सुविनीतरा भाव फिरायो। तसु मिच्छामि दुक्कडं थायो ॥ १९ ॥ देव गुरु धर्म उदार देश सर्व शंका दिल धार॥ तेहनुं मिच्छामि दुक्कडं सार। हिव शका न राखु लिगार ॥ २० ॥ कखा कखा अनमति नी बंछा जानी वाह्य क्रयावत वुगल ध्यानी॥ तसु प्रशंसा सेवा कीध। थावो मिच्छामि दुक्कडं प्रसिद्ध ॥ २१ ॥ विदगंछा संदेह फल माही। पोते राखी औरानें रखानी ॥ तेहनुं त्रिविध २ मोय। थावो मिच्छामि दुक्कड सोय ॥ २२ ॥ जिन आज्ञा मे न जाण्यों। आज्ञा बाहर धर्म बखाण्यो ॥ हिन्सा कीयां धर्म कह्यो कोय। थावो मिच्छामि दुक्कड मोय ॥ २३ ॥ पंच प्रमेष्टी नां गुन गाऊं। सांचो श्रद्धूं दूजा नैं श्रद्धाऊं ॥ म्हारे शिव सुखनी हद च्याह। तिहां जावण रो करूं उपाय ॥ २४ ॥ मोह कर्म पतलो नित कारस्यूं। भव सागर पार उतरस्यूं। दूजी ढाल मे प्रथम द्वार। वलि आगे वहु विस्तार ॥ २५ ॥

॥ दोहा ॥

देश चारितनां पडिकमुं। गुणियासी अतिचार (तिणमे)

साठ द्वादश व्रतनां । पन्दरे कर्मा धान टार ॥ १ ॥
पंच अणुव्रत अति भला । गुण व्रत त्रण अवधार ॥
चिहुं शिखा ये द्वादशूं । व्रत म्हारे सुखकार ॥ २ ॥
लेऊ तसु आलोयणां । आराधक पद हेत ॥
लख चौरासी नही रूलूं । सूत्र तसें संकेत ॥ ३ ॥

॥ ढाल ॥

सल्य कोई मत राखज्यो ॥ एदेशी ॥

व्रतालोयण मैं करूं । शुद्ध परिणां मे होई रे ॥ भोला बालक नीपरे । म्हारी आतमां लेऊ धोई रे ॥ व्रता ॥ १ ॥ त्रश जीव गाढे बांधसैं । बांध्या हुवे किण दोसो रे । गाढे घावे घालीया । अतिभार घाल्या करि रोसो रे ॥ थावो मिच्छामि दुक्कडं तेहनूं ॥ २ ॥ चामडी छेदी शस्त्र थी । भात पाणीनों विछोहो रे ॥ विन अपराधे आकूटी । हणवा बुद्धि करी हण्यां सोहो रे ॥ थावो ॥ ३ ॥ आल झूंठा किण जीव रै । दिया हुवे किण वारो रे । छानी बात प्रकाश नें । कियो हुवें किणरो विगारो रे ॥ थावो ॥ ४ ॥ मृषा उपदेश दिया वलि । लेख कूडा लिख्यो ताह्यो रे ॥ राज पंचा मुख आगलै झूठी साख भरायो रे ॥ थावो ॥ ५ ॥ थांपण मूषा ज्यो किया । इत्यादि मृषा वायो रे ॥ हान्सि कोतु-

छल थी कहा। फुन लोभ तणें वस आयो रे ॥ थावो ॥ ६ ॥ चोर तणी परे चोरियां। तालो तोड वदी तो ॥ परकूचियादि कारणें। चोर सुं करि हुवे प्रीतो ॥ थावो ॥ ७ ॥ वस्तु चोरी नो लेई हावे वलि साझ दियो किणवारो रे ॥ अदल बदल कपटें करी ॥ कियो राज विरुद्ध व्यापारो रे ॥ थावो ॥ ८ ॥ चोखी वस्तु दिखाय नें। निकमी आपी रे ॥ लोभ तणें वस आयनै। खोटा नांपणा नांपी रे ॥ थावो ॥ ९ ॥ देव मनुष्य तिर्यंच णी। देवाङ्गना सङ्ग होई रे ॥ परस्त्री अनें तिर्यंचणी। मांठी नजरां जोई रे ॥ ॥ थावो ॥ १० ॥ काल थोडानी राखी थकी। कुशील सेयो रत्ता होईरे ॥ हस्तकर्म्मादिक जोगसूं। पाप लागो हुवे कोईरे ॥थावे ॥ ११ ॥ अपरिग्रही वेश्यां आदिसु। मिथुनादिक अभिलाखीरे ॥ तीव्र परिणामें सेवियेरे। चक्षु कुशीलें झाखीरे ॥ थावो ॥ १२ ॥ कीला अनेक प्रकार सूं। स्त्रियादिक सूं भावीरे। नांता जुडाया परतणां। परनें हर्षधरी परणावीरे ॥ थावो ॥ १३ ॥ खेतु वथु हिरण्य सुवर्णनें। धन धानादिक ल्हायोरे ॥ कुम्भीधातु दि चोपद घणां। मर्याद उपरान्त बधायोरे ॥ थावो ॥ १४ ॥ ढाल भलीये तीसरी। कहि धुर द्वार मझारोरे। आगे विस्तार छे वलि घणूं। सांभलतां सुखकारोरे ॥

व्रतालोपणा मैं करूं ॥ १५ ॥

॥ दोहा ॥

गुणाव्रत के तण म्हांयरे, यथा शक्ति प्रमाण ।
दोषलागो हुवैतेहमैं, आलवणां तसु जाण ॥ १ ॥
चिहुं शिखा चोटी समां, आदरिया गुरुपास ।
दूषण लाग्यो किणममैं, आल वणा करूतास ॥२॥
तम्बोलीनां पान जिम, बारम्बार संभाल ।
करतां आतम ऊजलो, प्रगट थाय गुणमाल ॥३॥

॥ ढाल ॥

भोलाभर्म मैं क्यों भरयों । क्यों तुज आलज ऊठीरे । एदेशी । दिशि मर्याद थकी कदा । आगै जाय पाप कीनोरे ॥ ऊंचो नीचो तिरछो दिशामझे । कम बेसी गिण लीनारे ॥ लेऊ मिच्छामि दुक्कड तेहनूं ॥ १ ॥ सदेह सहित गतागति करी । आघो पाछो पगदोधोरे ॥ विनराखो भूमी तणों । आहार कीयो पाणीं पीधोरे ॥ २ ॥ सचित अचित द्रव भोगव्या । वलि गहणां वस्त्र सवायोरे ॥ येवा अनेक वेलां कीइ । अधिको भोगमैं आयोरे ॥ ले ॥ ३ ॥ पदर कर्म्मादान सेविया वलि अनेरा पानोरे । मन वचन कायाकरी अनुमाद्या हुवै जासोरे ॥ ले ॥ ४ ॥ कथा करी कंद्रप्यनी । भांड

कुचेष्टा कीधीरे । विन अर्थे पापारंभ किया । शस्त्र तीखा करया सीधीरे ॥ ५ ॥ सामायकमें क्रिया समे । हांसि कौतुहल अथायोरे । विनजोयां विन पूंजीया । तनचवलना सवायो रे ॥ लै ॥ ६ ॥ आयां विना पारी हुवे । भाषा सावद्य बोली रे । संसारिक कारज मझे मननी लगाई ओलीरे ॥ ले ॥ ७॥ सामायक मर्याद थी ओछी करी हुवे रहायोरे ॥ देव गुरु धर्म तीननां । अविनयामें वितलयायोरे ॥ ले ॥ ८ ॥ देशावगासी जे व्रतछे । ते नही सेयो सेवायोरे बस्तु आमी सामी वार ली । आपो पुद्‌गल शब्दें जणायोरे ॥ ले ॥ ९ ॥ पोषध करतां क्रियासमें । सेया सावद्य कामांरे ॥ विन जोयां विन पूंजीयां । क्रिरिया आमाने सामांरे ॥ ले ॥१०॥ आचार पास अनें भूमिका । उपग्रण सेझा संथारोरे ॥ सुपडि लेहणा न कीधी हुवे । निन्दा विकथा थी प्यारो रे ॥ ले ॥ ११ ॥ शुद्ध साधु निग्रथने । अप्रिय बचन जे भाख्योरे ॥ हेला निन्दा करि तेहनी । आल अछतो दाख्योरे ॥ ले ॥ १२ ॥ चौदह प्रकार नूं दानजो । असूझता दिक्ष दीधोरे ॥ स्व पर बस क्रिया अवसरे । साधुरे काजकीधोरे ॥ ले ॥ १२ ॥ मेल प्रासु बस्तु सचितपे । वलि सचित थी ढाकयोरे ॥ अणागमतो आहार साधुने । माडाणी करि नांख्योरे ॥ ले ॥ १४ ॥

भांणी बैठ मुनि राजनी । भावना नही भाईरे । दान आलश थी नहिं दियो । शुद्ध मिलयां जोगवाईरे ॥ ल ॥ १५ ॥ ये द्वादश व्रतां तणों । आलोवणा करी सीधी रे ॥ जिन सिद्ध साधु साखथी । आतम निरमल कीधी रे ॥ ल ॥ १६ ॥ तप आचार द्वादश विषै । अभिग्रह त्याग अनेकोरे ॥ तसु अनाचार सेव्यो हूवे । बलवीर्य गोप्यो विशेकोरे ॥ ल ॥ १७ ॥ चौथी ढाल कहि.भली कह्यो पहलो ये द्वारोरे ॥ कहतां सुणतां सुखल है । आनन्द हर्ष अपारोरे । प्रथम द्वार इम जाणज्यो ॥ १८ ॥ इति प्रथम द्वार ॥

॥ कलस ॥

इम प्रथम द्वार सुधार आतम व्रत आलवणा जे कही । इणरीत जे श्रावक सुद्धातम, क्रियां आराधक सही ॥ लागयो हूवे कोई दोष तेहनुं, गुरु मुख प्रायश्चित लही । तप अग्नि सूं कर्म काष्ट जाली, पालिये व्रत ऊमही ॥ १ ॥

॥ अथ दुसरो सम्यक व्रतरोपणद्वार ॥

॥ दोहा ॥

अव्रतथी ग्रहस्थाश्रमे, अनेक पाप उत्पन्न ।
आरंभ परिग्रह सर्वथा, तजस्यूं ते दिन धन्न ॥ १ ॥

पूर्वे सुगुरु समीप मैं, समकित व्रत लिया तेह।
ते हिवडां फून ऊचरू, सिद्ध साधु साखिह ॥२॥

॥ ढाल अरिहन्त मोटकाये ॥

समकित शुद्ध मन आदरू ए। अरिहन्त छे मुझ देवकै ॥ गावूं गुन जेहनां ए। सांचे मन करू सेवकै समकित आदरूं ए ॥ १ ॥ ते कर्मरूप अरिजण हण्यां ए। रोक्या छे पापनां द्वारकै ॥ रागद्वेष चय किया ए। निजगुन प्रगट उदारकै ॥ स ॥ २ ॥ लोकालोकनी वस्तुनां ए। जाण रह्या सब भाव कै। जिन नाम कर्मथी ए ॥ अतिशय अधिक अथायकै। गावूं गुन जेहनां ए ॥ ३ ॥ नरसुरइन्द्रादिक बहू ए। नरपति सारे सेवकै ॥ कहूं गुन किहां लगी ए। मोटा प्रभू देवापति देवकै ॥ गा ॥ ४ ॥ चोतीश अतिशय ओपता ए। पैंतीस वाणी वदीतकै॥ द्वादश गुन भला ए। अष्टादश दोष रहितकै ॥ गा ॥ ५ ॥ शुद्ध साधु गुरु म्हांयरे ए। पंच समिति हुसियारकै ॥ महाव्रत पंच पालता ए। तीन गुप्ति धरप्यारकै ॥ यहवा गुरु म्यांयरे ए ॥ ६ ॥ च्यार कषाय निवारनैं ए। पाले छे तेरा बोलकै ॥ परिसह सहनमे ए। सुर गीर जेम अडोलकै ॥यहवा॥ ॥ ७ ॥ सतरे विध संजम धरा ए। असंजम सतर टारकै ॥ बावन अणाचार तजे

ए दोष । बयांलो परिहारकै ॥ यहवा गुरु स्यांरै ॥ ८ ॥ धर्म जिनेश्वर भाषियो ए । अहिन्सा सुखकारके ॥ वलि जिन आंणमे ए । न होवे पाप लिगारकै ॥ धर्म शुद्ध आदरू' ए ॥ ६ ॥ वलि दुरगति पड़ितां जीवनें ए । धारी राखे ते धर्मके ॥ साधु श्रावकनु भलो ए । पाल्या शिव सुख परमकै ॥ धर्म ॥ १० ॥ व्रतमे धर्म जाणु खरो ए । अव्रत अनर्थ मूलके ॥ दया अनुकम्पा भलो ए । धर्म थी छै अनुकूल कै ॥ ११ ॥ करुणा मोह स्नेहनी ए । क्रियां पाप सुजाणकै ॥ अव्रत सेवा-वियां ए । अधर्म काह्यो जगभांणकै ॥ धर्म ॥ १२ ॥ कुगुरु कुदेव कुधर्मनें ए । बोसराऊ दूषणधारकै ॥ यथा-साक्ति आदरू ए । व्रत पचखाण उद्धारकै ॥ धर्म ॥ १३ ॥ पहिलो व्रत त्रस जीवनें ए । आकूटी नें जांणकै ॥ हणवा बुद्धि करी ए । मारण मरावण पचखाणकै ॥ व्रत इम आदरू' ए ॥ १४ ॥ राज डंडे लोक भांवे ए । इसो मोटो झूंट परिहारकै ॥ दूजो व्रत जांणिये ए । कारण जोग सुविचारकै ॥ व्रत ॥ १५ ॥ तालो तोडि परकुञ्चीसुं ए । परधन चोरण नेमकै ॥ करण जोगें करी ए । तीजोव्रत करै येमकै ॥ व्रत ॥ १६ ॥ देव देवी तिर्यंच थी ए । परस्त्री वेस्यां आदिकै ॥ मनुष्य मनुष्यणी ए । चौथो मिथुन मर्यादकै ॥ १७ ॥ पंचमें

परिग्रहानूं करूं ए। यथा शक्ति प्रमाणकै। नव विध जे कह्यो ए॥ धन धानादिक जाणकै॥ व्रत ॥ १८॥ ऊंचो नीचो तिरछो दिशा ए। जावण राखो जेहकै॥ उपरान्त जायनें ए। पञ्च आस्रव पच्चखेहकै॥ व्रत॥ १६॥ उपभोगनें परिभोगमे ए। आवै छै छब्बीस बोलकै॥ त्याग क्रियां तिणे ए। सातमूं व्रत अमोलकै॥ व्रत॥ २०॥ आठमे अनर्थ डंडनां ए। त्याग करै जावज्जीवकै॥ च्यार प्रकारनां ए। कह्या पाप अतीवकै॥ व्रत॥ २१॥ सामाइक नवमे करै ए। दशमे संवर आनकै॥ पोसो व्रत ग्यारमूं ए। बारमूं साधानें दे दानकै॥ व्रत॥ २२॥ ढाल भली ए पांचमी ए। आख्यो छै दूजो द्वारकै॥ श्रावक शुभ भावसूं ए। आराधै धर प्यारकै॥ व्रत ॥ २३॥

॥ कलश ॥

ए कह्यो दूजो द्वार सार उदार आराधन तणूं, व्रत-धार पार संसार करिवा, मुक्ति वरवा मनघणूं। पाप-टाल पखाल आतम निरमल कर भल भावसूं। भ्रम जाल आल पंपालतज भज जिन कृपाल उमावसूं॥१॥ ॥ इति॥

॥ अथ तीजो खमावन द्वार ॥

॥ दोहा ॥

व्रतधारक भवि शुद्धमन । खमत खामनां सार ॥ निरमल आतम किम करै। आखूं ते अधिकार ॥१ ॥ सरल पणें वच कायसूं । मन थी कपट निवार । नमन भाव दिल आणिनें ॥ खमाविये तजखार ॥ २ ॥

॥ ढाल छट्ठी ॥

संभव साहिब समरिये ॥ एदेशी ॥

सात लाख योनि महीधरा ॥ सात लाख अप पाणीनी जोणिके । सात लाख तेऊ अग्निनी ॥ वायु पिण इतनौं कही गोणिकै । खमत खामनां तेह थी ॥१॥ एक जीव इक तनु मही । तेह प्रत्येक वनस्पति कायकै ॥ दश लख योनि जिन कही । चौदह लख साधारण ताय-कै ॥ खमत ॥२॥ जीव अनन्ता एकसा । एक शरीर मे रह्या तिण न्यायकै ॥ लीलण फूलण आदिमे । जमी-कन्द अंकुरा मांयकै ॥ खमत ॥ ३ ॥ सूक्ष्म बादर विहुं परै । क्रोध भाव आण्या हुवै कोयकै ॥ त्रिविध २ म्हांयरै । मिच्छामि दुक्कडं कै अवलोयकै ॥ खमत ॥ ॥ ४ ॥ बादर पांचूं कांयनें । हणी हणाई निजपर

काजकै ॥ अनुमोदी हणतां प्रते। ते तिहुं जोग आलोवूं आजकै। खमत ॥ ५ ॥ लट गिनोला बेंद्री। कीड़ादिक तेन्द्री नां जीवकै ॥ खटमल प्रमुख विशासिया। कलुष भाव करि पाडी रीवकै ॥ खमत ॥ ६ ॥ मांखी मांछर चौरिन्द्री। बिच्छु प्रमुख हण्या हुवै सोयकै ॥ ये तिहुं बेकेन्द्री तणों। योनि लख जाणों दोय दोयकै ॥ खमत ॥ ७ ॥ रत्नप्रभा: जाव तमतमा। सात नरक मे नेरीया जेहकै ॥ च्यार लाख योनि तेहनी। तास खमावूं धरल पणेहकै ॥ खमत ॥ ८ ॥ च्यार प्रकारे देवता। भुवन पती व्यन्तर सुविचारकै ॥ योतषी अनें विमानका। चिहूं लख योनि घणों अधिकारकै ॥ खमत ॥ ९ ॥ द्वेष भाव किया अवसरे। आण्या हुवें वलि कलुष परिणामकै। तास खमावूं भली परे ॥ खमज्यो तुम्हे देवा अभिरामकै ॥ खमत ॥ १० ॥ तुर्य लाख तिर्यंचनी। जलचरमे मच्छादिक जाणकै ॥ थलचर थलपे चालतो। हाथी अश्वादिक बहु प्राणकै ॥ खमत ॥ ११ ॥ उरपर उरु सें गति करै। शर्पादिक वलि विवध प्रकारकै ॥ भुजपर उन्दर आदि है। तासु खमावूं तज चित खारकै। खमत ॥ १२ ॥ गमन आकाश करै तसु। खेचर पंखी कहिजे जासकै। हांस कौतुहल दिक करी। हण्या हणाया हुवे वलि

तासकै ॥ खमत ॥ १३ ॥ पांच भेद तिर्यंच ये ॥ मन
विमना इन्द्रिय धर पांचकै ॥ सर्व प्रते तीन जोग सूं ।
खमत खामनां करू तज खांचकै ॥ खमत ॥ १४ ॥
चौदह लख योनि मनुषनी । सूत्र विषै भाखी जिन-
रायकै ॥ तसु मल सूत्रादिक मही। कलूछंम मनु उपजै
आयकै ॥ खमत ॥ १५ ॥ ये चोरासी लख जाणिये।
जीवा जोणि जे उपजण ठामकै ॥ बारम्बार ते सब
प्रते । खमत खामना छै अभिरामकै ॥ खमत ॥ १६ ॥
देव अरिहन्त जे केवली । अनन्त चौबीसी हुई भर्त
जेहकै ॥ इम हिज ऐरवय पंचमे । वर्तमान जिन
पंच विदेहकै ॥ खमत ॥ १७ ॥ विनय करी कर
जोड़नें मन शुद्ध थी खमाज्यो अपराधकै ॥ भव भव
शरणों तुम तणों । तिणसुं थावे परम समाधिकै ॥
खमत ॥ १८ ॥ दूजे पद सिद्ध सुख करू । पूर्व प्रयोगे
गति परिणामकै ॥ सर्वारथ सिद्ध थी अछे । द्वादश
योजन ईसी प्रभाः नामकै ॥ खमत ॥ १९ ॥ ते थी
उर्द्ध लोकान्तकै । गाउं इकरै छट्टे भागकै ॥ अनन्त
गुणो तुम्हें जयो वस्या । हिव पायो मैं तुम तणों
मागकै ॥ खमत ॥ २० ॥ जे कोई जाण अजाणतां ।
आशातनां हुई तासु खमायकै ॥ आंवण तिहां मन
लग रह्यो । तुम सरिषो तुम जपियां थायकै ॥ खमत

॥ २१ ॥ आचारज तीजे पटे। सम्यक्त चर्ण तणां दातारके ॥ शुद्ध प्ररूपण जेहनी। महा उपगारी महा सुखकारके ॥ खमत ॥ २२ ॥ उवझाया गण वत्सलू। भणे भणावे निरमल ज्ञानके ॥ गणी आणां न उलंघता। पाले पंच महाव्रत मानके ॥ खमत ॥२३॥ दाता समकित चर्णरा। देश व्रत पालूं तुम जोगके ॥ जे कोई जाण अजाणतां। आशातना हुई विन उपयोगके ॥ खमत ॥ २४ ॥ शुद्ध साधु अढी द्वीपमे। पंचयाम नव कल्प बिहारके ॥ निरलोभी निर लालची। जाचे दोष बयाली टारके ॥ खमत ॥ २५ ॥ भिक्षु गणमें महा मुनी। साध्वियां सहु गुण भंडारके ॥ अप्रिय वच तसु द्रूप थकी। कियो अविनय खमाऊं सारके ॥ खमत ॥ २६ ॥ गुण विहुणा गण बाहिरा। टालोकर वलि भ्रष्टाचारके ॥ तासु खमावूं भली परे। किण अवसरे कियो कलुष विचारके ॥ खमत ॥ २७ ॥ मात पिता सुतनें धुया। वलितसु अंगज थी किण कालके ॥ बान्धव न्याती गोती सें। मित्र अमित्र सहु समभालके ॥ खमत ॥ २८ ॥ नोकर चाकर दास धी दासीनें वलि तसु अङ्ग जातके ॥ जो कोई जाण अजाणतां। स्व पर वश वच कटु आख्यातके ॥ खमत ॥ २९ ॥ क्रोध मान माया करी। लाभथकी

दिया अछता आलके ॥ सहु संसारी जीवसि। खमत्त खामना अधिक रसालके ॥ खमत ॥ ३० ॥ निज स्त्री पुत्र पुत्रीनें। हित शिक्षा देतां किया बारके ॥ कारडा बचन कह्या हुवे। कारज घरनां करावण सारके ॥ खमत ॥ ३१ ॥ नाम लेईनें जुवा जुवा। सर्व भणी इम खमत खमायके ॥ मन बच कायाई करी। दिलमे मच्छर भाव मिटायके ॥ खमत ॥ ३२ ॥ धर्म जिनेश्वर भाषियो। पायो इण भवमे सुविसालके ॥ विघ्न मिटै संकट कटै। तास प्रशादे मंगल मालके ॥ खमत खामना इम करै ॥ ३३ ॥ तीजै द्वार आराधना। खमाविये कही छट्ठी ढालके ॥ आराधना पद पाविये। जिन बच म्हामां नयण निहालके। खमत खामना इम करै ॥ ३४ ॥ इति।

॥ कलश ॥

इम खमत खामन अतहि पावन, विमल भावन नित धरै। वहु अघ खपावे सुगुँ सुणावे, आत्म हित चित सुख करै ॥ श्री जिनेश्वर महाराज भव दधि, पाज काज सियां सरै। कहै श्रावक गुलाब सु भाव गुण युत अतही आनन्द निज घरै ॥ १ ॥

———

॥ अथ चतुर्थ द्वारम् ॥

॥ दोहा ॥

चौथे द्वारे छांडवा, अष्टादश जे पाप।
पाप तज्यां, शिव सुखलहै, तिणसूं थिर चित थाप॥१॥

॥ ढाल ॥

इण अवसर धनजी आवे तथा मेव सुनी नी कीजै। सेवाथी वंछत सीभैजी ॥ एदेशी ॥

मतकर तूं श्रावक पापं। जिन धर्ममे थिर चित थापंजी ॥ म ॥ १ ॥ पहलो अघ प्राणातिपातं। दूजो अघ मृषा बातंजी ॥ म ॥ २ ॥ तीजो अघ अदत्ता दानं। चौथो अघ मिथुन सुजानंजी ॥ म ॥ ३ ॥ पचम अघ जे धन धानं। छट्टो अघ क्रोध वखानंजी ॥ म ॥ ४ ॥ सातमूं अघ छै अभिमानं अष्टम माया कपट तोफानंजी ॥ म ॥ ५ ॥ नवमूं लोभ निवारो। दशम राग परिहारोजी ॥ म ॥ ६ ॥ इग्यारमूं द्वेष न धरिवो। बारमूं कलह न करिवोजी ॥ म ॥ ७ ॥ अवाख्यान न दीजे। पर परिवाद न कीजेजी ॥ म ॥ ॥ ८ ॥ संजमथी अरति ल्यावे। असंजम रति मन भावेजी ॥ म ॥ ९ ॥ ये पाप सोलमूं छांडो। रति

अरति दोनूं छांडोजी ॥ म ॥ १० ॥ कपट सहित झूंठ बोलै। सतरमुं माया मृषा ओलैजी ॥ म ॥ ११ ॥ अठारमूं अघ अति भारी। मिथ्या दर्शन सल्य विचारीजी ॥ म ॥ १२ ॥ ये पाप अठारा जाणी। त्यांनें परहरै उत्तम प्राणीजी ॥ म ॥ १३ ॥ छांडणरी मनसा राखै। ते शिव सुख जलदी चाखैजी ॥ म ॥ १४ ॥ चौथे द्वार इम भावै। अंत समे पाप बोसरावैजी ॥ ॥ म ॥ १५ ॥

॥ कलश ॥

चौथे द्वार अराधनां कह्यो पापनें वोसरायवो ॥ कियां पाप अति दुःख परभवे इम जीवनें समझायवो धन संत तंत महंत नौका। पापनी रजटालता निज आतम सम पर प्राणि जांणी। पंच महाव्रत पालता ॥ १ ॥ इति ॥

॥ अथ पञ्चमूं शरण द्वार ॥

॥ दोहा ॥

पंचम द्वारे धारवा, मनसे शरणां च्यार।
अरिहन्त शिद्ध साहु बलि, जिन भाषित धर्म सार ॥१॥
शरणां थी सुख संपजे, दुःख दारिद्र पुलाय।
विघ्न मिटै संकट कटै, मन वाञ्छित मिलजाय ॥२॥

॥ ढाल ॥

प्रभु वासु पूज्य भजले प्राणी ॥ एदेशी ॥

प्रथम शरण अरिहन्त देवा । त्यांरी सुरनर सहु सारे सेवा ॥ चरण कमलनी बलिहारी । मुझ शरण अरिहन्त तणूं भारी ॥ १ ॥ जे कर्म रूप बैरी मास्या । लहि केवल भविजन नें तास्या । ते च्यार तीरथनां करतारी ॥ मु ॥ २ ॥ फिटक सिंहासन पै बैसी । साधु श्रावक धर्मनां उपदेशी । अहिन्सा अति सुखकार ॥ मु ॥ ३ ॥ तरु आशोक भलो स्होवे । अतिशय छत्र चमर होवे । भामंडलनी छिव भारी ॥ मु ॥ ४ ॥ सुर दुन्दभी नूं झणकारं । पुष्प बृष्टी सुगन्धित अनुकारं । सुर धुनी भविजननैं प्यारी ॥ मु ॥ ५ ॥ अनंत ज्ञान दरशन धारं । सुख बल अनन्त नहीं पारं । द्वादश गुण ये हितकारी ॥ मु ॥ ६ ॥ दोष अष्टादश दूर किया । राग द्वेष अरि प्रति जीत लिया । बीत राग प्रभु गुणधारी ॥ मु ॥ ७ ॥ आठ महा प्रतिहारज छाजे । वाणी गुण पणतीस करी गाजै । चौतीस अतिशय सुविचारी ॥ मु ॥ ८ ॥ त्रिगढा विच प्रभुजी सोहवे । चिहुं मुख दिशमें मन म्होवे । समोवसरण रचना भारी ॥ मु ॥ ६ ॥ जे अष्ट कर्म नूं नाश करी । एक समय मांहि शिव रमण वरी । यथा सिद्ध निरं-

जन अविकारी ॥ मु ॥ १० ॥ अजोगी अभोगी अवि-
नाशी । अनन्त आतमिक सुख सुविलासी ॥ जिके
आवागमन दियो टारी । मुझ शरणों सिद्ध तणों
भारी ॥ ११ ॥ निवड कठिन जे कर्म दही । बलि
ज्ञान क्रिया करि मुक्ति लही । अठ गुण अतिशय येक-
तीस त्यांरी ॥ मु ॥ १२ ॥ तीन काल तणां सुर सुख
लहिये । तसु अनन्त वारंगणा फुन दहीये । तेहथी
अनन्त गुणों सुख हैं सारी ॥ मु ॥ १३ ॥ तीजो शरणों
मन भावो । साधू साध्वियानों मुझ थावो ॥ पंच
सुमति महा व्रतधारी । मुझ शरणों साधां तणों भारी
॥ १४ ॥ बयांलीस दोष तज आहार लेवै । हित
शिक्षा भविजन नें देवै । पाले संजम सतरै प्रकारी
॥ मु ॥ १५ ॥ मांडलानां पांच दोष टालै । तिके
राव रंक सहु सम भालै । विषय इन्द्रियां नां परि-
हारी ॥ मु १६ ॥ दुष्ट अश्व मन जीत लियो । बलि
कांदर्प मनथी दूर कियो । आप तरै परनें तारी ॥ मु ॥
॥ १७ ॥ निन्दा प्रशंसा मे सम भावे । राग द्वेष
किणही पर नहिं ल्यावे ॥ भोग तजी थया ब्रह्मचारी
॥ मु ॥ १८ ॥ दुःख नरक निगोद थकी डरता । तजी
स्नेह नव कल्प विहार करता । ते सुविनीत गुरू
आज्ञा कारी ॥ मु ॥ १९ ॥ केवल ज्ञानी जे धर्म

कह्यो। तेहो संवर निरजरा मांहि रह्यो॥ कर्म काटे नें रुके सारो। मुझ शरणों धर्म तणो भारो॥ २०॥ जिन आज्ञा मांहि धर्म अखै। जिणि दुर्गति पड़तां नें धारि रखै। व्रत धर्म अव्रत दुःख कारी॥ मु॥२१॥ दान सुपात्र सुख प्रगटै। पाल्यां संजम तपथी पाप कटै। भव भ्रमण मिटै वरै शिव नारी॥ सु॥ २२॥ इम च्यार शरणां जे नित ध्यावै। रोग सोग जिणारै नहिं थावै। ये ढाल आठमी जयकारी॥ मु॥ ॥ २३॥

॥ कलश ॥

जयकार सार उदार शरणां, विघ्न हरणा ये कह्या। सुख कार पर उपगारि श्रावक तणें मनमे बस रह्या॥ अघटार खार निवार भवि तूं धार चिहुं विध शरणकों। संसार गार असार पारावार भवदधि तरणकों॥ १॥ इति॥

॥ अथ छट्ठो दुकृत निन्दा द्वार॥

॥ दोहा ॥

दुक्तनी निन्दा करै, छट्ठा द्वार विषेह।
कुकर्म किया कराविया, ते सहु याद करेह॥ १॥

वलि धिक्कार हुआ जीवनें, राग द्वेष वश आया।
लोभ वशे अनर्थ किया, निन्दा तेहनीं जाण ॥ २ ॥

॥ ढाल नवमी ॥

सीता आवेरे धर राग ॥ एदेशी ॥

भवभव भमियो निज गुण गमियो, रमियो मिथ्या मांहि। सुगुरु न नमियो मन नहिं दमियो। मन वच निन्दू ताहि। दुक्रत निन्दू धरि अहलाद ॥ १ ॥ खोटा देव खोटा गुरु सेव्या। वलि धार्यो कुधर्म। बाह्य अडम्बर देखो तेहनुं नमियो शर्माशर्म ॥ दुःक्रत ॥२॥ अन्य मति क्रत शास्त्र बांचिया श्रद्धा विरुद्ध विचार। अशुद्ध प्ररूपन कारी कुसंगे। ते निन्दू धर प्यार ॥ दुक्रत ॥ ३ ॥ हिन्सा मांही धर्म जाणियो नगिण्यों दोष लिगार ॥ भागल भ्रष्टरी संगत सेती आरंभ किया अपार ॥ दुक्रत ॥ ४ ॥ शुद्ध साधु नां गण थी बाहर। निकलिया जे तास ॥ धर्म जाण अशणांदिक दीधो ॥ वलि नमस्कार कियो जास ॥ दुक्रत ॥ ५ ॥ दान कुपात्रां नैं धर्म जाणी। दियो हुवे जे कोय ॥ इच्छा असंजम जीतवनी। थावो मिच्छामि दुक्कडंमोय ॥ दुक्रत ॥ ६ ॥ स्नेहराग अनुकंपाकरि के। जिन धर्म जाण्यो होय ॥ अव्रत सेतां अनें सेवातां। श्रध्यो धर्म सु सोय ॥ दुक्रत ॥ ७ ॥ वीतरागनूं निस्नेही मारग। ढांक्यो

हुवे किणवार ॥ कुमारगने प्रगटज कीधो । ते निन्दूं धरप्यार ॥ दुःकृत ॥ ८ ॥ इंगालिक कर्म्मादिक पंद्रा । सेव्या कर्म्मादान ॥ निज पर अर्थ कुकारज कीधा । लीधा अदत्ता दान ॥ दुकृत ॥ ६ ॥ आलस करी उघाडा राख्या । घृत आदि रसनां ठाम ॥ घाणी प्रमुख मे जंतु पिलाव्या । किया निन्दनीक जे काम ॥ दुकृत ॥ १० ॥ खान खुदाई भूमि फडाई । ढोल्या अणगल नीर ॥ यंत्र घटी ऊंखल मूशल दिक । करतां नहिं जाणी पर पीर ॥ दुकृत ॥ ११ ॥ महा आरंभ करि जीव विराध्या । बोल्या मृषावाद ॥ पर द्रोह दीधी चोरी कीधी । सेव्या मिथुन उनमाद ॥ दुकृत ॥ १२ ॥ परिग्रहा मांहि लिप्त रह्यो चित । कीधो क्रोध विशेष ॥ मान मायानें लोभथकी मे ! किया रागनें द्वेख ॥ दुकृत ॥ १३ ॥ दुष्ट परिणामा त्रसजीवांनें । पाणी मांहि डबोय ॥ हांसि कोतुहल करि मन हरख्यो । राख्या थापण मोसा मोय ॥ दुकृत ॥ १४ ॥ कसाई प्रमुखरा भव मे माख्या । त्रस प्राणी दिन रात ॥ भाडे चलाव्या सगट ऊंटादिक । लालच थी करी घात ॥ दुकृत ॥ १५ ॥ न्यायालय में हाकम होकि । किया अधिक अन्याय ॥ पक्षपात धर करि पंचायत । कुडो साख भराय ॥ दुकृत ॥ १६ ॥ हाव पकाव्या कुंभारनें भव । तेली भव मे तेल ॥

मालो भव में वृक्ष विणास्या। रांगण भव रेलापेल॥ दुकृत॥ १७॥ हिन्सक जीव सिंह मृगादिक। खेली तास सिकार॥ मद्य मांसनां भक्षण कीधा। पिया गांजा सुलफा धार॥ दुकृत॥ १८॥ विनजोयां विनपूंज्यां ईंधण। बाल्या चूल्हा मांहि॥ लट गिनोला घुंण इल्यादिक। विराधिया हुवे ताहि॥ दुकृत॥ १९॥ परद्रोह दोधी कलह लगाव्या। घातकरी विश्वास॥ गर्भ गलाव्या मंत्रपढाव्या। बसीकरणादिक जास॥ दुकृत॥ २०॥ गुणवंतानां गुण नही गमियां। दिया अकृता आल। संत सत्यांरी निन्दा कीधी। मच्छर भावें भाल॥ दुकृत॥ २१॥ पंच आस्रव सेव्या सेवाया। तिमहीज पाप अठार॥ इणभव परभव दुकृत कीधा। थावो त्रिविध २ प्रकार॥ दुकृत॥ २२॥ इणपरि दुकृत कारज तेहनी। निन्दा छट्टे द्वार॥ इलु कर्म्मी निन्दे दुष्टातम। पावे सुख अपार। दुकृत निन्दे धरि अहलाद॥ २३॥ इति॥

॥ कलश ॥

अपार शिव सुख सास्वता। गुरू आसता थी पामिये॥ कुदेव कुगुरु कुधर्म ये तिहुं। मन हुंती सहुवामीये। जे क्रिया सावद्य कार्य्य तेहनी निन्दनां करिये

वलो। शुभकार्य्य भलभावें आचरिये। जेम थावे रंग-रली॥ १॥

॥ इति षष्टम द्वार॥

॥ अथ सप्तम् सुकृत अनुमोदनाद्वार॥

॥ दोहा॥

तप उपवासादिक क्रिया। व्रत संवर सुखकार।
सुकृतनो अनुमोदनां। सप्तम द्वार मझार॥१॥
जिनमार्ग शुद्ध निरमलो। समकित चर्या उदार।
ज्ञान दरशन चारित्र तप। ते अनुमोदूं सार॥२॥

॥ ढाल दशमीं॥

नींदडलो हो नाह निवारिये॥ एदेशी॥

श्री तीरथ पति इम उपदिश्यो। मत हणज्यो हो छकाय ना जीवके॥ अनेरा पास म हणावज्यो। अनुमोद्यां हो लागे पाप अतीवके॥ करो जिन धर्मनो अनुमोदनां॥ १॥ भोजन विवध प्रकारनां आरंभ कियां हो निपजे छे तायकै॥ छहुं कायारी हिन्सा हुवे। भोगवियां हो किञ्चित् धर्म न थाय के॥ करो॥ जो खाणां पीणां में धर्म हुवे। तो श्रावक तिणानें हो त्याग्यां पाप पंडूरकें वलि दूजांनें त्याग करावियां। अनुमोद्यां हो लागे अघ भरपूरके॥ करो॥ ३॥ सर्व

ब्रत्तो साधू भला । ते टाली हो बाकी संसारी जीवके । त्यांरो खाणों पीणों बलि पहरणों । सब अव्रत मे हो जाणों दुरगति नीवके ॥ करो ॥ ४ ॥ सावद्य खाटा जाणिनें । मुनि त्याग्या हो काम भोगादि सोयके ॥ ते सावद्य ग्रहस्थे कियां । तिण मांहि हो धर्म पुन्य किम होयके ॥ करो ॥ ५ ॥ हुमहिज मृषा बोलिया । बोलाव्यां हो अनुमोद्यां एकके ॥ अदत्त मैथुन सेवियां । सेवायां हो थावे व्रत मे छेक के ॥ करो ॥ ६ ॥ वलि पंचमूं आस्रव परिगरो । ते राख्यो हो पाप लागे छे सोयके ॥ ते दूजा ने दियां दवावियां । भलो जाण्या मत जाणो धर्म कोयके ॥ करो ॥ ७ ॥ ये पाचू त्याग्या मे धर्म छे । तो सेवतां हो अशुभ कर्म बंधायके ॥ अनेरा ने सेवायां अनुमोदियां । तीनू करणा हो एक सरीषा थाय के ॥ करो ॥ ८ ॥ दशमां अङ्ग मे जिन कह्यो । आस्रव छाड्यां हो श्री जिनजीरा धर्म के ॥ व्रत अव्रत ज ओलख्यो । तेही जाणै हो इण बात रो मर्मके ॥ करो ॥ ६ ॥ कहै साता दियां साता हुवे ॥ ते नहिं जाणो हो श्री जिन धर्म नो बात के ॥ जे धर्म अधर्म न ओलख्यो । त्यारै घट मे हो बसियो घोर मिथ्यातके ॥ करो ॥१०॥ श्री सुयगडांग सूत्र मे तिण मे सूक्ष्म हो भाष्यो श्री जिनराज के । आज

मार्ग सूं अलगो कह्यो । इम इत्यादिक हो षट बाल पिछाण के ॥ करो ॥ ११ ॥ अशुद्ध प्ररूपण छांडनें । शुद्ध प्ररूप्यो हो जिन आज्ञा मे धर्म के ॥ तरणों बक्षो स्व पर तणो ते अनुमोद्यां हो पावे शिव सुख पर्म के ॥ करो ॥ १२ ॥ ये ज्ञान दरशन चारित तप भला । भावदधि मे हो तिरवानें जहाभक्के ॥ ते सम्यक् प्रकारे सेविया । सेवाया हो अनुमोदूं ते आजके ॥ करो ॥ १३ ॥ अरिहन्त सिद्धने आयरिया । उवज्झाया हो वलि मोटा अणगार के ॥ तेहनी स्तुति सेवा करी। अनुमोदूं हो विनय करि नमस्कार के ॥ करो ॥ १४ ॥ सामाईक पोसा किया । छहूं आवश्यक हो किया कालों कालके ॥ उद्यम कियो जिन धर्म मे । अनुमोदूं हो पालया व्रत रसालके ॥ करो ॥ १५ ॥ निरदोष दान सुपात्रनें दियो । देवायो हो भलो जाण्यों जेहके । तेहनो करूं अनुमोदना । अलगो थावे हो कर्म रंज खेह के ॥ करो ॥ १६ ॥ दया अनुकम्पा जे करी । करावी हो भली जाणी तास के ॥ संजम जीवत वंछियो । मन वच काया हो अनुमोदूं जासके ॥ करो ॥ १७ ॥ शुद्ध साधु निग्रन्थ सें । में सुणियो हो बारू सरस वखानके ॥ सूत्र तणां वच सांभल्या । अर्थ धारया हो ते अनुमोदूं

बान कौ ॥ करो ॥ १८ ॥ दान शील तप भावना । ए सेव्या हो सेवाया धरि चित्त कै ॥ समकित दृढ़ करि आसदथा ॥ अनुमोदूं हो ते परम पवित्त कै ॥ करो ॥ १९ ॥ जिन शासन अधिक दृढावियो । वलि गाया हो गणिलां गुण ग्राम कै ॥ अत्यन्त हर्ष धरि ऊचरा । अंतस मनसूं हो अनुमोदूं तांम कै ॥ करो ॥ २० ॥ इत्यादिक सुकृत तणों । अनुमोदन हो एह सप्तम् द्वार कै ॥ श्रावक तन मनसें करै ॥ आनन्द थावे हो दशमो ढाल विचार कै ॥ करो ॥ २१ ॥ इति ॥

॥ कलश ॥

आनन्द थावैं दुःख जावे सुख पावे धर्म सूं । जे भविक भावे सुबुद्धि आवैं द्रप मिटावे नर्म सूं । इम जाण व्रत पचखांण कीजै दान दीजै पात्र नैं अव्रत तजी जे व्रत पाली जे आराधीजैं यात्र नैं ॥ १ ॥

॥ इति सप्तम् द्वार ॥

॥ अथ अष्टम् भावना द्वार ॥

॥ दोहा ॥

अष्टम द्वारे भावना । भावे श्रावक सार ।
अशुभ कर्म दूरा टलै । पावे सुख अपार ॥ १ ॥

तन धन जोवन कारमों। बादल जेम विलाय।
देखो दिनकर तेहनी। तीन अवस्था थाय॥ २॥
डाभ अणीं जल बिन्दुवो। 'जीतव जाणो' तेम।
तिणमुं उत्तम नर नारियां। राखो धर्म सें प्रेम॥३॥

॥ ढाल इग्यारमीं ॥

श्रेयांस जिनेश्वरकूं प्रणामुं नित्त वेकर जोडिरे॥ एदेशी॥

तज विभाव निज भावमें। रमिये नर चतुर सुजाणरे॥ निज आतम में गुण घणां। मत पर गुण म सुख जाणरे॥ मत पर गुण मे सुख जाण श्रावक गुण ग्राहिका भावो भावना एम उदाररे॥ १॥ अनन्त ज्ञान दरशन भला। वलि चारित वीर्य अपाररे एह निजगुण छैं थाहिरा। जरा अन्तर ज्ञान विचार रे॥ जरा॥ श्रा॥ भावो॥ २॥ निजगुण बिन सहु कारमां। विणसंता न लागै वार रे॥ अथिर जोवन धन जाणिये। जिम बीजली नो चिमत्कार रे॥ जिम॥ श्रा॥ भावो॥ ३॥ ए तनु जे तूं पामियो। ते खिण में भंगुर थायरे॥ तूं अविनाशी आतमां। इण संग क्यों रह्यो लोभायरे॥ इण॥ श्रा॥ भावो॥४॥ अशुभ कर्म थी आतमा। मैलो होय रह्यो अति जासरे॥ शुभ परिणाम सु ध्यायिनें। प्रगट करिये गुण खासरे॥ प्रगट॥ श्रा॥ भावो॥ ५॥ मनुष जनम

दुरलभ लह्यो । आज छेत पुन्य प्रमाणरे ॥ उत्तम कुल आय ऊपनूं । पायो आयु शुभ दीर्घ जाणरे ॥ पायो ॥ श्रा ॥ भावो ॥ ६ ॥ बल प्राक्रम इन्द्रियां तणों। मिलियो सतगुरु नों संयोगरे ॥ तो पिण धर्म करै नही। एहवो मूर्ख मूढ़ आयोगरे ॥ एहवो ॥ श्रा॥ भावो ॥७॥ पुत्र कलत्र परवार सें। धन धान परिग्रह मांहिरे ॥ मूर्छित मोहनी छाक मे । म्हारो २ कर रह्यो ताहिरे ॥ म्हारो २ ॥ श्रा ॥ भावो ॥ ८ ॥ ए सहु स्वार्थनां सगा। मतलब विन न करै साररे ॥ वेदन वंटावे नही । पुत्रादिक जे परिवाररे ॥ पुत्रा ॥ श्रा ॥ भावो ॥ ९ ॥ पूर्वे जेहवा बांधिया । तेहवा उदय हुवे पुन्य पापरे ॥ सुख दुःख उपजे जीवरै । ते भोगवे आपो आपरे ॥ ते भोगवै ॥ श्रा ॥ भावो ॥ १० ॥ वेदन उपजे शरीर मे। तिण अवसर एम विचाररे ॥ बार अनन्तो भोगव्या । दुःख नरक निगोद मझाररे ॥ दुःख ॥ ॥ श्रा ॥ भावो ॥ ११ ॥ तेतीश सागर लगि सह्या । दुःख सातमी नरक अनन्तरे । तो यह मनुष्यनां भव तणां । राई समकिचित् हुन्तरे ॥ राई ॥ श्रा ॥ भावो ॥ १२ ॥ जे मैं समकित विन क्रिया । पाली कष्ट सह्यो बहु वाररे ॥ आतम कार्य सर्यो नही । समकित विन नही भव पाररे॥ समकित ॥ श्रा ॥ भावो ॥१३॥

हिव समकित व्रत पाविया। आयो रतन चिन्तामणि हाथरे ॥ तो यह वेदन समपणैं। सह्या लाभ अत्यन्त विख्यातरे ॥ सह्या ॥ आ ॥ भावो ॥ १४ ॥ कष्ट खम्यां सम भाव सें। टूटे अशुभ कर्म अघ जानरे ॥ उष्ण तवे जल बिन्दु ज्यों। भस्म हुवे कह्यो परम कृपालरे ॥ भस्म हुवे ॥ आ ॥ भावो ॥ १५ ॥ सूको तृण पूलो अग्नि में। शोघ्र पणैं दहै तिम कर्मरे ॥ पंचमां अङ्ग विषे कह्यो। इम जाणि कीजे जिन धर्मरे ॥ इम ॥ ॥ आ ॥ भावो ॥ १६ ॥ अल्पकाल दुःख सहन थी ॥ शिवपाम्यां गजसुखमाल रे ॥ चरम जिनन्द चौवोसमा ॥ कष्ट खमिया अति सुविसालरे ॥ कष्ट ॥ आ ॥ ॥ भावो ॥ १७ ॥ बहु वर्षे तीव्र वेदना। सही चक्री सनत कुमाररे ॥ मुक्ति गया कर्म चय करी। पाया आतमीक सुख साररे ॥ पाया ॥ आ ॥ भावो ॥ १८ ॥ मुनि जिन कह्यो उदेरिने। लेवै कष्ट जे विविध प्रकाररे ॥ तो थारे ए वेदनां सहणैं उदय थई इण वाररे ॥ सहणैं ॥ आ ॥ भावो ॥ १९ ॥ सम भावे श्रेयासियां कर्म राशि तणू चक्र चूररे ॥ किञ्चित् कालमें दुःख सह्यां। पावे सुगति सुख भरपूररे ॥ पावे ॥ आ ॥ भावो ॥ २० ॥ अतिरोग पीड़ायां जगत में। दुःख भोगे अज्ञानी जीवरे ॥ तो हूं ज्ञानी किमकहूं ॥

वेदन उपज्यां रुदन अतीवरे ॥ वेदन ॥ श्रा ॥ २१ ॥ नव महीनां गर्भावास मे । परवश पायो अति दुःखरे ॥ तो स्ववश ये वेदनां । खमियां पर भव में घणों सुखरे ॥ खमियां ॥ श्रा ॥ २२ ॥ पुद्गल सुख ये पामला । मिलिया वार अनन्त अथायरे ॥ गृद्ध पणैं लिण मे रह्यां । पड़ै शिव सुखनों अन्तरायरे ॥ पडे ॥ ॥ श्रा ॥ भावो ॥ २३ ॥ आर्त रौद्र निवार नें । ध्यावो धर्म ध्यान दिल मांहिरे ॥ अनित्य असरण जं भावनां । भायां भव २ मे दुःख नांहिरे ॥ भाया ॥ श्रा ॥ भावो ॥ ॥ २४ ॥ पर भवसें आयो एकलो । वलि जासे एका एकरे ॥ काचै भरोसैं कांई रहो । जरा समझो आणि विवेकरे ॥ जरा ॥ श्रा ॥ भावो ॥ २५ ॥ इम जाणी शुद्ध निरमलो । पालो संजम सतरे प्रकाररे ॥ च्यार कषाय निवार नें । उतरो भव सायर पाररे ॥ उतरो ॥ ॥ श्रा ॥ भावो ॥ २६ ॥ ज्यो साधू पणो नही ग्रहि-सको तो श्रावक ना व्रत बाररे ॥ निर अतिचारे पा-लियां । थावै नेडा शिव सुख साररे ॥ थावे ॥श्रा॥ भावो ॥ २७ ॥ त्याग बैराग बधाविये । करिये उत्तम साधू नी सेवरे ॥ निन्दा विकथा परहरी । छांडो चुद्र भाव अहमेवरे ॥ छांडो ॥ श्रा ॥ भावा ॥ २८ ॥ मतकरो धननूं गारवो पायो बार अनन्त अपाररे ॥ सुख दुःख

बहुला पाविया। राखो चितमें समता साररे॥ ॥ राखो॥ आ॥ भावो॥ २६॥ धर्म अपूर्व पावियो। मिली सद्गुरु नौ जोगवाययरे॥ तो ढील करो काई कारणौं। रात दिवश ये योंही जाययर॥ रात॥ आ॥ ॥ भावो॥ ३०॥ रोग जरा जिहां लगि नहीं। पाणो पहिलां थी बांधो पाजरे॥ मित्र स्नेही ज्यो आपणां। देवो त्यांनें धर्म नुं साजरे॥ देवो॥ आ॥ भावो॥ ॥ ३१॥ धर्म करन्ता जीवनें॥ मत पाडो तिणरै अन्तराययरे॥ तेहनां फल कडुवा घणां। पावै भव २ दुःख अथाययरे॥ पावै॥ आ॥ भावो॥ ३२॥ इम जाणी गुणवंत नां। गावो गुण छे जे तेह म्हांयरे अष्टम् द्वारे ज्ञारमीं॥ धर्म करसी ते नहीं पिछतायरे ॥ धर्म॥ आ॥ भावो॥ ३३॥ इति॥

॥ कलश ॥

अनित्य १ अशरण २ एकान्त ३ भावन, संसार ४ अनन्त ५ अशुचि ६ भावनां। आस्रव ७ संवर ८ निरजरा ६ फुन लोकालोकनौं ध्यावनां १०। धर्म ११ नें वलि बोधबीज १२ ये बारे भावना भाविये। परिणाम शुद्ध थिर भाव राखो। संचित पाप धुलाविये॥ १॥

॥ इति अष्टम् द्वार॥

॥ अथ नवमों अणशण द्वार ॥

॥ दोहा ॥

सामायक पोसा करै। प्रतिक्रमणां शुभ ध्यान ॥
समता रसमें झूलता। धन २ ते गुणवान ॥ १ ॥
कुबिसन तज भगवन्त भज। राग द्वेष बिहूं टार ॥
स्व आतम में गुण घणां। करिये उज्वल सार ॥ २ ॥
संचित पाप मिटायवा। छेहलै अवसर सार ॥
नवमें द्वार कह्यो भलो। अणसणनूं अधिकार ॥ ३ ॥

॥ ढाल बारमीं ॥

सीतां भविषण नें कहै निशंक सुं ॥ एदेशी ॥

अनन्त मेरु सम पुद्गल भोग्या। मीठा अमिय समानोंरे ॥ इक २ लोक आकाश प्रदेशें। वार अनंत पिछानोंरे धन २ गुणवन्त अणशण धारै ॥ १ ॥ अनंत पुद्गल लेई पाछा वमिया। भव २ मांहि विचारोंरे तोही चेतन तुज भूख न भागी। तृष्णा अधिक अपारोरे ॥ धन २ ॥ २ ॥ सरस भोजन मन गमता पाया। बलि मन गमतो पाणीरे ॥ प्रभात समें उठ्यो तब भूखो। अणशण करै इम जाणीरे ॥ धन २ ॥ ३ ॥ द्विविध अणशण श्रीजिनवर भाख्यो। पादोपगमन जाणोंरे ॥ भात पाणीनां त्याग ते दूजो। जावज्जीव प्रमाणोंरे ॥ धन २ ॥ ४ ॥ पूर्व सनमुख वेकर जोड़ी। नमोथूणं सिद्धां

नें करियेरे ॥ दूजो अरिहन्त भगवन्त प्रभुनें। तीजो धर्म आचारज नें उचरियेरे ॥ धन २ ॥ ५ ॥ असण खादम स्वादम प्रति तजनें। अवसर जाणि पाणी परिहारोरे॥ तृषा परिसह आय ऊपनां। अडिग रहै सुविचारोरे॥ धन २ ॥ ६ ॥ मात तात सुत बंधव तिया। इत्यादिक परवारोरे॥ हाट हवेली बाग बगीचा। तेहथी स्नेह निवारोरे ॥ धन २ ॥ ७ ॥ रतन करंडिया समये आया। तेहनें पिण वीसरावेरे ॥ सावध कारज नहिं करै तिणसें। धर्म ध्यान चित्त ध्यावेरे ॥ धन २ ॥ ८ ॥ आनन्द श्रावक कियो संथारो। अवधि ज्ञान उपज्यो आईरे ॥ सुधर्म कल्पे जाय ऊपनूं। एकावतारी थाईरे ॥ २ धन २ ॥ ९ ॥ सम परिणामां कष्ट सह्यां थी। कर्म निरजरा थावेरे ॥ संसार भ्रमणनूं छेद करै फुन। पुन्यरा थाट बंधावेरे॥ धन २ ॥ १० ॥ इण पर लोकनी वंछा न करतो। जीतव मर्ण न चाहवेरे ॥ काम भोगनी आशा तजनें। गुणवन्त नां गुण गावेरे ॥ धन २ ॥ १२ ॥ शिव सुख सामी दृष्टि राखे। रमण करै निज गुणमेरे। आतम सुख अभिलाषी श्रावक। सार न जाणैं सुख पुन्यमेंरे॥ धन २ ॥ १२ ॥ नवमें द्वारे ढाल बारमी। कह्यो अणशण अधिकारोरे ॥ छेहले अवसर करै गुणवन्त

श्रावक । पामै सुख अपारोरे ॥ धन २ ॥ १३ ॥
॥ इति ॥

—o—

॥ कलश ॥

अपार सुख शिवनां कह्या तिहां जन्म जरा मृत्यु नहीं । नहिं रोग सोगरु भोग, शंका वलि दुःशंका नहिं रही ॥ जिहां रमन है उपियोग केवल ज्ञान दरशन में सही । सहु द्रव्य भावनां जाणछै प्रभु सिद्ध लोकाग्रे रही ॥ १ ॥

॥ अथ दशमूं द्वार ॥

॥ दोहा ॥

दशमे द्वार करै सही, पांच पदां नु जाप ।
विघ्न मिटै स्मरण कियां, क्षय थावे सहु पाप ॥ १ ॥
अरिहन्त सिद्धनें आयरिया, उवझाया अणगार ।
भजन करै इण पांचनूं, तेह थी जय जयकार ॥२॥

॥ ढाल तेरमीं ॥

मना मारू निरखण दे मन गोर । तथा आतम सुभाव ओलख करणी सु पामैं भव जल तीर ॥
॥ एदेशी ॥

शुभ परिणाम वलि शुभ लेश्या । प्रशस्त भला-आतम गुण प्रगटाय । सुगण जन । जपिये श्री नवकार ॥ १ ॥ जीहनें सखाय पणौं करि पामे । परभव सम्प्रति सार ॥ अण भोगिक सुर पदवी पामे । इन्द्रादिक अवतार ॥ इन्द्रादिक ॥ सु ॥ इन्द्रा ॥ जी थांरो आतम ॥ सु ॥ जपिये श्री नवकार ॥ २ ॥ पंच परमेष्ट समकित युत जपियां । भव दधि गौपद जेम ॥ शीघ्र पणौं तरिये शिव वरिये । फुन अञ्जली जल तेम ॥ ॥ फुन ॥ सु ॥ फुन ॥ जी थांरो ॥ आ ॥ जपिये ॥३॥ वछड़ा चरावतो बालक आयो । नदी पूर देख तिंवार मंत्र नवकार जपी मांहि पैठो । सरिता थई दोय डार ॥ सरिता ॥ सु ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ ४ ॥ रतनवती जे भीलनी नारी । तिण सुमर्यो नवकार ॥ अध्यवसाय ॥ अहो निशि धर्म ध्यान दिल धरतां । कर्म पटल खय थाय ॥ कर्म ॥ सुगण जन ॥ जी थांर किंचित कालमें पुन्य उपावी । पांचमें कल्प अवतार ॥ पांचवें ॥ सु ॥ पांच जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ ५ ॥ शर्प तणौं थयो पुष्पनी माला । श्रीनवकार प्रभाव ॥ श्रीमती सती कीर्ति लहि भारी । उभय भवें सुख सार ॥ उभय ॥ सु ॥ उभय भवें ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ ६ ॥ जहाज डूबंता सेठ समुद्रे । गुणियों श्री नव-

कार ॥ सहाय कियो सुर जहाज उठावी । मेलदी पैली पार ॥ मेलदी ॥ सु ॥ मेलदी पैली पार जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ ७ ॥ श्री नवकारनुं स्मरण करतां दूर टलै जंजाल ॥ वैरी दुस्मन डायण सायण । नाश जावे तत्काल ॥ नाश जावे ॥ सु ॥ नाश जावे ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ ८ ॥ सम दृष्टी श्रावक गुणवंता। जे सुमरै नवकार ॥ जेहनां फलनुं कहिवुं किस्युंते । पामें भवजल पार ॥ पामें भवजल पार ॥ सु ॥ पामें ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ ९ ॥ तुम जाणो स्मरण नित करिये । धरिये आतम ध्यान ॥ निरवध करणी फुन आचरिये ॥ सुनिये श्रीजिन वान ॥ सुनिये ॥ सु ॥ सुनिये ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ १० ॥ निज-पर भाव विलोक यथार्थ ॥ श्रद्ध द्रव्य षट काय ॥ आरंभ छाड़ तोड़ अघ घाती । शिव गति नेडी थाय ॥ शिव ॥ सु ॥ ११ ॥ मच्छर भाव तजो नित तूं तो। गुणवंतनां गुण गाय ॥ ज्ञाता सूत्र विषे जिन भाख्यो । गौत तीर्थंकर बंधाय ॥ गौत्र ॥ सु ॥ गौत्र जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ १२ ॥ श्री जिन शासण पंचमें अर्के भिक्षु गणी सुखदाय ॥ विविध मर्याद बांदि गण वत्सल मिथ्या तिमिर हटाय॥ मिथ्या ॥ सु ॥ मि ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ १३ ॥ द्वितिये पाट भारीमाल गणा-

षिप। तृतिय पाट ऋषिराय ॥ तुर्य जयाचार्य महा प्रभाविक। लाखां ग्रन्थ बणाय ॥ लाखां ॥ सु ॥ लाखां जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ १४ ॥ मघवा सम मघराज पंचमें। तसु पट माणिक कहाय। सप्तम पट श्री डालचन्द गणी। दीर्घ दृष्टी सुख दाय॥ दीर्घ ॥ सु ॥ दीर्घ ॥ जो थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ १५ ॥ तेहने पाटे वर्तमान मे। शोभत जिम जिनराय ॥ श्री श्री कालूराम गणीस्वर ॥ प्रणम्यां पातिक जाय ॥ प्रणम्यां ॥ सु ॥ प्रणम्यां ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ १६ ॥ यह जिन शासण सुखनु वासन। ये गणनें गणिराय ॥ अहो निशि सेवा करलो भविजन मत कर अवरनी चहाय ॥ मत ॥ सु ॥ मत ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ १७ ॥ इण शासण मे रत्ति रहै। त्यांरो करत सदा सुर सहाय ॥ ऋद्धि वृद्धि थाने दुःख मिट जावै विघ्न न होवे कोय ॥ विघ्न ॥ सु ॥ विघ्न ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ १८ ॥ च्यार तीर्थ सुख धाम स्वाम सुभ। श्री कालूगणि राय ॥ तेहनु श्रावक गुलाब कहै ॥ थयो आनन्द हर्ष सवाय ॥ आनन्द ॥ सु ॥ आनन्द ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ १९ ॥ तसु आदेशी संयम भेणो। आतमां अर्थी जान ॥ पूनमचन्द मुनि शान्ति सुद्रा। पूनमचन्द समान॥ पूनम॥सु॥ पूनम॥ जी थांरो

॥ सु ॥ जपिये ॥ २० ॥ चंप तरु सम चंपालाल ऋषि । ज्ञान दौलत वंत जान ॥ दौलतराम मुनि ये तीनूं । बांचे सरस बखाण ॥ बांचे ॥ सु ॥ बांचे ॥ जी थारो मु ॥ जपिये ॥ २१ ॥ उंगणीसय बहोत्तर सम्वत् में । जेष्ट मास कहिवाय । तेरा ढाल दशविध आराधन । कहि जयपुर सुखदाय ॥ कहि ॥ सु ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये श्री नवकार ॥ २२ ॥ इति ॥

॥ कलश ॥

सुखदाय आराधन करै इम, भविक मन उच्छाह हो । ते पाप पंक निशंक टाले, व्रत संभाले उमाह हो ॥ श्री कालू गणी महाराज मुनि सिरताज तासु पसाय हो । कहै गुलाब निज गुन आत्म प्रगटे, भण्यां आनन्द थाय हो ॥ १ ॥

॥ इति दशविध आराधन ॥

॥ अथ स्वामी श्री भीखनजी कृत ॥

॥ श्रावक गुण सज्झाय ॥

॥ कीकेईरे कुकला कीलवे ॥ एदेशी ॥

भिन भिन जाणेरे श्रावक जीवनें । जाणें अजीव पुन्य पापोजी ॥ आश्रवनें जाणेरे कर्म लगावतो । संवर टाले संतापोजी ॥ भगवंत भाख्यारे श्रावक यहवा ॥ १

॥ निरजरा पाडेरे ढीलो बंधनै। करणी करै तिण हेतोजी ॥ मुक्ति तणां सुखजाणैं सास्वता। उघड्या अभ्यन्तर नेतोजी ॥ भ ॥ २ ॥ पीतै परखैरे गुरुनें अकल सूं। अन्तरंग ज्ञान विचारोजी ॥ भेष देखी श्रावक भूलै नही। देखै शुद्ध आचारोजी ॥ भ ॥ ३ ॥ ब्रतांनें जाणैरे माला रतनां तणी। अव्रत अनर्थ खाणोंजी ॥ रेणादेवी थी पिणये बुरी। त्यागै मांठी जाणोंजी ॥ भ ॥ ४ ॥ आदरिया ब्रत साधु मांहिला। ये म्हांरे जिनधर्मीजी ॥ शेष रह्या जे कांम संसारनां। तिणमुं यंवता जाणें कर्मींजी ॥ भ ॥५॥ श्रावक जाणैरे श्रीजिन आगन्या। जाणैं धर्म अधर्मीजी जिण करणी में नहिं जिन आगन्या ॥ तो बंधता जाणें कर्मीजी ॥ भ ॥ ६ ॥ परचो पाखंडियांरो श्रावक नहिं करै २ तिणसुं वातोजी ॥ नीचो मस्तक श्रावक नहिं करै। नहिं करै ऊंचो हातोजी ॥ भ ॥ ७॥ भमायो किणरो लागै नही। नही करै कूडो ताणोंजी ॥ धर्म ठिकाणैरे झूट बोलै नहीं। पालै श्रीजिन आंणोजी ॥ भ ॥ ८ ॥ गुरुनें देखैरे दोष लगावता। तो तुरन्त करै नीकालोजी ॥ लाला लोलोरे कर ऊठै नही। श्रीजिन शासणरी पालोजी ॥ भ ॥ ९ ॥ कुगुरु वंदनारो फल तिहां श्री-लखै। रूलै अनन्तो कालोजी ॥ भागल गुरांनें श्रावक

वंदे नहीं । भगवंत वचन संभालोजी ॥ भ ॥ १० ॥ कुगुरुनें जाणेंरे काला नागज्यूं । कारडो तिणरो डंकोजी ॥ मुक्ति नगरनां ते छे धाडवी । चोड़े खासे निःशं-कोजी ॥ भ ॥ ११ ॥ सुणे वखाणरे साधां आगले । येकाकी चित्त ल्यायोजी ॥ साधु कहे ते सुंण सुंण हुलसे । मन रलिया यत थायोजी ॥ भ ॥ १२ ॥ सद् गुरु वांदेरे भले मन भावसुं । नीचो शीश नमायोजी ॥ तीन प्रदक्षणां दे कर जोडिनें । पगांरे मस्तक लगायोजी ॥ भ ॥ १३ ॥ मार्ग जातांरे मुनिवर ज्यो मिले । वांदी हर्षित थायोजी ॥ विकसत थावेरे मुनि-वर देखनें । वलि करे घणों नरमायोजी ॥ भ ॥ १४ ॥ बारा व्रतरे आदरतो रहे । अव्रत के आगारोजी ॥ पोते सेवे सेवावे अवरनें । तिणमें नहो शुद्ध धर्म लिगारोजी ॥ भ ॥ १५ ॥ व्याज उधारोरे धन ल्यावे पारको । घररो कांम चलायोजी ॥ धर्म बतावेरे धन ल्यावो पारको । इसडो न करे अन्यायोजी ॥ भ ॥ १६ ॥ लोक कहेछेरे निन्दक पापियो । ते निन्दा नरक ले जायोजी ॥ श्रावक निन्दारे नहिं करे केहनी । जिन शासण मांहि पायोजी ॥ भ ॥ १७ ॥ जेतला द्रव्य छे लोका लोक में । जाणें तिणरो न्यायोजी ॥ द्रव्य खेत कालनें वलि भाव सुं । जाणें गुण पर्यायोजी

॥ भ ॥ १८ ॥ मोसा मर्म न बोलै कीहनें। न करै कूडी बातोजी ॥ कूड कथन नहीं करै श्रीजिनमती । नहिं करै दगो नें घातोजी ॥ भ ॥ १६ ॥ ओछा बोल न बोलै कीहनें । गुण कर गहर गंभीरोजी ॥ चरचा करतांरे विच बोलै नहीं । जेम छोली पीवै नीरोजी ॥ भ ॥ २० ॥ लोक सुणें बखाण साधां आगलै । नहिं पाडे तिणमें वेदाजी ॥ कर्म घणां पैलो समझै नही करै क्रोधनें खेदाजी ॥ भ ॥ श्रा ॥ २१ ॥ इति ॥

॥ अथ जिन आणां धर्म स्तवनम् ॥

॥ राग आसावरो ॥

भविका जिन आणां धर्म धारो । येतो मानों कह्यो हमारोरे ॥ भविका जिन ॥ ए आंकडी ॥

श्री तीर्थं पति धर्म धुरंधर । जग वत्सल सुखकारो ॥ अनन्त ज्ञान दरशन चारित्र धर । तसु कीजे नमस्कारोरे ॥ भविका जिन० ॥ १ ॥ ज्ञान दर्शन चारित्र तप नौका । मोक्ष मार्ग ये च्यारो ॥ श्रीजिन आणा में चिहुं, आया । उत्राध्ययन अधिकारोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥ २ ॥ सवरनें वलि निरजरारे । धर्म ये दोय प्रकारो ॥ ये भल रीत आराध्यां चेतन । पामैं भव नुं पारोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥ ३ ॥ पंच महाव्रत साधु कीरा । श्रा-

वकां ना व्रत बारो ॥ जिन आणा में थे विरुद्ध भाखा। अविरत रह गई न्यारोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥ सर्व व्रत धारी संजती कहिये। अविरत असंजति धारो॥ व्रताव्रती श्रमणोपाशक। ते व्रत जिन आणा मंझारोरे ॥ भ ॥ ॥ जिन० ॥ ५ ॥ श्रावक नों खाणों पीणों ते। सावद्य जोग व्यापारो॥ जिन मुनि आण न देवे तिणरो। धर्म न होवे लिगारोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥ ६ ॥ खाणां पीणां नें धन धानादिक। अविरत मे अधिकारो॥ उववाई सुयगड़ा अङ्ग मांही। पाठ देख उर धारोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥ ७ ॥ मुझ आणां मे म्हांरो धर्म छै। आचाराङ्ग संभालो॥ चरम जिनेश्वर वीर परमेश्वर। भाष गया तंत सारोरे ॥भ ॥ जिन० ॥ ८ ॥ तेह धर्म नां दोय भेद छै। दशवै कालिक मंझारो॥ अहिंसा है जिण कर्तव्य में। तहां संजम तप सारोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥ ९ ॥ सुगुरु आशीश पिण येहज दीनी। आगमरेस विचारो॥ आलस मत करोज्यो आणां में। उद्यम आणां वारोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥ १० ॥ निरवद्य कार्य्य मांहि आज्ञा। जिन मुनि दे इकधारो॥ सावद्य मांहि आज्ञा मत जाणों। नहीं संदेह लिगा- रोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥ ११ ॥ करण करावण वलि अनुमोदन॥ येह तीनूं इकसारो॥ श्रीजिन आज्ञा शिर

धारीजे। तब होवे निस्तारोरे॥ भ॥ जिन० ॥१२॥ कोई आज्ञा मे पाप बतावे। धर्म जिन आज्ञा बाहारो। दोनूं बातां अशुद्ध प्ररूपे॥ ते किम पामैं भव पारोरे॥ भ॥ जिन॥ १३॥ श्री जिनमत का साधू बाजे॥ थापै बिना बिचारो॥ कुदृष्टान्त देई भोला नें॥ बह-कावैं निराधारोरे॥ भ॥ जिन० ॥ १४॥ जो थांरे तिरणों होवे तो। शुद्ध साधू गुरु धारो। भेष धारयां री सङ्गति तजनें। अन्तर ज्ञान बिचारोरे॥ जिन०॥ ॥ १५॥ जो पुरी समझ पड़ै नहीं तो। शुद्ध जपो नवकारो॥ गुणवन्तो का गुण गाई नें। अशुभ कर्म सब टारोरे॥ भ॥ स॥ जिन०॥ १६॥ निन्दा विकथा दूर तजी नें सूत्र सुणों सुखकारो॥ जिण आज्ञा बाहर धर्म कहि नें। परभव मतना बिगारोरे॥ स॥ जिन०॥ १७॥ अहिंसा धर्म सुखसुं कहि नें म करो हिंसा प्रचारो॥ हीणाचारीकृत ग्रन्थ बांचकै। अहलो जन्म मत हारोरे॥ भ॥ जिन०॥ १८॥ ठांम २ जिन आगम मांहीं॥ आज्ञा अधिक उदारो॥ धारो जिन भाष्यां धर्म नीको॥ गुलाब कहै सुख कारोरे॥ भ॥ जिन०॥ १९॥ इति॥

॥ अथ जिनमार्गस्तवनम् ॥

॥ राग उजाड़ में ॥

शुद्ध मग सांचो भूलै मतजाय। प्यारे तोनें कहूं छूं समजाय ॥ शुद्ध ॥ ए आंकड़ी ॥

दान शील तप भाव ये च्यारों। शिवपुर केरा राह ॥ झूंठो पंथ छांड अब प्राणी। ज्यो आत्म सुख चाह ॥ शु ॥ १ ॥ दान सुपात्रें दोहिलोरे। भाख्यो श्री जिनराय ॥ चित वित पात्र तीनूं शुद्ध, मिलियां। मन वांछित फल पाय ॥ शु ॥ २ ॥ चित शुद्ध वस्तु कहाय ॥ पात्र सु साधू जानियेरे। जे न हणें षट-काय ॥ शु ॥ ३ ॥ देतां दाता दान सुपात्रें। संचित कर्म हटाय ॥ उत्कृष्टो रस आवियारे। तीर्थंकर पद पाय ॥ शु ॥ ४ ॥ चौथे ठाणें आखियोरे ॥ पंच-मुद्देशा मांय ॥ कुपात्र ते कुक्षेत्र छेरे। बोयां निर-फल थाय ॥ शु ॥ ५ ॥ असंजती अविरती नें रे। अष्टम् शतक कहाय ॥ छट्टे उद्देशे गौतम पूछ्यो। वीर प्रति सुखदाय ॥ शु ॥ ६ ॥ सचित अचित प्राशू अप्राशू। प्रति लाभ्यां स्युं थाय ॥ जिन कहै एकान्त पाप हुवेरे ॥ निरजरा किंचित् नांय ॥ शु ॥ ७ ॥ आनन्द श्रावक लियो अभिग्रह। उपाशक दशा

कहाय । अन्य तीर्थी नें आजथीरे । देवूं देवावूं नांहि ॥ शु ॥ ८॥ मृगा लोढ़ा नें देख नें रे । गौतम जिनपै आय ॥ पूछे स्यूं दीधो इग पूर्वे । तेहना यह फल पाय ॥ शु ॥ ६ ॥ तिगमुं दान कुपात्र नांरे । फल अति कटुक कहाय। हिन्सक भगी हिन्सा करि दीधां धर्म किहां थी थाय ॥ शु ॥ १० ॥ सावद्य दान प्रशं-सियांरे । घातक कहिये ताहि ॥ सुयगड़ा अङ्ग इग्यारमे अध्यन में । बीसमो गाथा मांहि ॥ शु ॥ ११ ॥ दान निषेद्यां लेगवालानी । वृत्ती नूं छेदक थाय ॥ तिण कारण वर्तमान काल में । मून करे मुनिराय ॥ शु ॥ ॥१२॥ षटकायांरी रक्षा निमित्त । पुन्य नही कहणीं ताय ये पिण सुयगडा अङ्गमेरे । भाष्यो श्री जिनराय ॥ शु ॥ १३ ॥ वलि पंचम् अध्ययन मेंरे । बत्तीसमीं जे गाह ॥ दान देतां लेतां तिण अवसर ॥ मुनि न कहे हां नां ॥ शु ॥ १४ ॥ भ्रमण हेतु संसार नोरे । ग्रहस्थि भणी जे दान ॥ देवो त्यागणों मुनिवरे । सुयगड़ा अङ्ग जान ॥ शु ॥ १५ ॥ वलि प्रायश्चित चौमास नुंरे ॥ अनुमोद्यां सें आय ॥ निशीथ उद्देशे पनरमेंरे । भाष्यो श्री जिनराय ॥ शु ॥ १६ ॥ श्रावक नोजे खाणों पीणों अव्रत में कह्यो तेह ॥ सूत्र सुया गड़ा अङ्ग दूजे श्रुतस्कंधे । द्वितीय अध्ययन निखेह

श्रु ॥ १७ ॥ भाव शस्त्र अविरत कह्योरे । ठाणांअङ्ग दशमे ठाण ॥ तेह शस्त्र तीखो कियां थी । धर्म पुण्य मत जाण ॥ श्रु ॥ १८ ॥ श्रावकनों जे आतमारे । अविरत नो अपेचाय ॥ शस्त्र अछे छकायनोरे । निर्मल विचारो न्याय ॥ श्रु ॥ १९ ॥ सामाइक मे पिण कह्योरे । अधिकरण जिनराय ॥ भगवती सप्तम् शतकमेरे । प्रथम उद्देशा मांय श्रु ॥ २० ॥ खाणां पीणां पहरणांरे । त्याग्यां थी हुवे धर्म ॥ भोग्यां भोगायां वलि अनुमोद्यां । बंधे अशुभ अघ कर्म ॥ श्रु ॥ २१ ॥ साता दियां साता हुवैरे । इम अन्य तीर्थी कहन्त ॥ सुयगड़ा अंग श्री जिन भाख्यो । ते सुणिज्यो विरतन्त ॥ श्रु ॥ २२ ॥ न्यारो आर्ज मार्ग थीरे अलघो समाधि थी जाण ॥ धर्म तणों निन्दानु करता । जेह बधे इम वाण ॥ श्रु ॥ २३ ॥ अल्प सुखां रै कारणरे । बहुत नु हारण हार ॥ अमोलखो कारण अछैरे । भाख्यो श्री जगतार ॥ श्रु ॥ २४ ॥ लोह वणिक जिम झूरसीरे । तेह प्ररूपणहार ॥ सूत्र देख निरणय करोरे ॥ जिम होवे निस्तार ॥ श्रु ॥ २५ ॥ पात्र कुपात्रे आंतरोरे सरिषो फल नहिं थाय ॥ आम्ब भरोसे वायां धतूरो । आम्ब किहां थी खाय ॥ श्रु ॥ २६ ॥ निरारम्भी बिन अवरनैरे ॥ देवे दिवावे ताहि ॥ तेमारंग

लोकोंकी छेरे। पिण शिव मारग नांहि॥ शु॥२७॥ राय प्रश्रेणी सूत्रमेंरे प्रदेशी राजान॥ च्यार भाग करि राजरारे। थयो धर्म करण सावधान॥ शु॥ २८॥ एक भाग राण्यां निमित्तरे॥ दूजो भाग खजान॥ तीजो हय गय अर्थ छौवे चौथा भागरो दान॥ शु॥ ॥ २९॥ इम चिहुं भाग करी तिणेरे। धन्य भयो बौलाय॥ संसारिक लफरों इम मेटो॥ छट्टम २ तप ठाय॥ शु॥ ३०॥ व्रतधारी श्रावक थयोरे धर्म ध्यान चित्त ध्याय॥ तेता बेला करि कारज सारा। प्रथम उपाङ्गरे माय॥ शु॥ ३१॥ दान सुपात्र दीजियेरे देकर मत पोमाय॥ धुरमार्ग यह शिव तणोंरे॥ भाख्यो श्री जिनराय॥ शु॥ ३२॥ सुभाज प्रमुख पूर्व भवेंरे सुख विपाकरै मांहि दान देई शुद्ध साधुनेंरे। एका-वतारी थया ताहि॥ शु॥३३॥ शिव मग दूजो शील-छैरे। तीजो तप कहिवाय शुभ भावन चोथो कह्योरे। आराध्यां सुख थाय॥ शु॥ ३४॥ अथवा उत्ताध्ययन मेंरे। मोक्ष मार्ग इम च्यार॥ ज्ञान दर्शन चारित्र तप नौका। वलि धुर अंग मंझार॥ शु॥ ॥३५॥ सम्यक् ज्ञान दर्शन थकीरे। तत्व यथा तथ्य जाण॥ कर्म रुके चारित्र थीरे। तप सुं कर्म बोदाण॥ शु॥ ३६॥ जिन भाषित यह मार्ग छैरे। अन्य २

मति जान ॥ गुलाब कहै भल भाव सें'रे । साध्यां शिव सुख स्थान ॥ श्रु ॥ ३७ ॥ इति ॥

॥ अथ असंयम जीवितव्य वर्जनीय ढाल ॥

आज नन्दन वन जोगी आयो । जोगीरो रूप सवायो हे मा ॥ इस चालमें ॥

असंजम जीतव मतकोई वंछो वरज्यो श्रीजिन-रायोरे लो ॥ ए आंकड़ी ॥ जीवणो नाहिं वंछणों । ठाणा अङ्ग दशमां मांह्यो रेलो ॥ फुनसुयगडांग दशम् अध्ययनें । गाथा चोबीसमों ताह्योरे ॥ लो ॥ अ ॥१॥ अण आदर, देता मुनि विचरै । श्री सुयगड़ा अङ्ग मांह्यो रेलो ॥ असंयम जीवितव्यनां अरथी । ते बाल अज्ञानी कहायो रेलो ॥ अ ॥ २ ॥ संजम जीतव कह्यो दोहिलो । असंजम जीतव नांह्यो रेलो ॥ बार अनन्त पायो भव, भवमें । गरज सरी नहिं कांयो रेलो ॥ अ ॥३॥ संसारिक जीवां न' जीवणों । वंछ्या धर्म न थायो रेलो ॥ रारागी देख्यां राग ऊपजे । द्वेषी सु' द्वेष सवायो रेलो ॥ अ ॥४॥ वंछे संसारिक जीवणो मरणो । ए राग द्वेष कहिवायो रे लो ॥ रागते दशमूं द्वेष ग्यारमूं । भगवन्त पाप बतायो रेलो ॥ अ ॥ ५ ॥ इन्द्र परीक्षा करण मुनिनों । ब्राह्मन रूप बनायो रे लो ॥ मिथिला नगरी अग्नि सु' बलती । नमिराय

प्रते दरशायो रे लो ॥ भ ॥ ६ ॥ मिथिला पुरी जन बलता देखी। तांम नाम ऋषिरायो रे लो ॥ स्हामों न जोयो करुणा न आंणी। उत्तराध्येयन मांह्यो रे लो ॥ भ ॥ ७ ॥ कह्यो बसूं जीवूं मे सुखसूं। संजम मे लवल्यायो रे लो ॥ ए मिथिला जन बलतां म्हारो। किंचित बलै न ताह्यो रे लो ॥ भ ॥ ८ ॥ सूत्र निशीथ द्वादशम् उद्देशे। पाठ विषै इम बायो रे लो ॥ त्रश जीव देखी अनुकम्पा करि। बांधे बंधावै सरायो रे लो ॥ भ ॥ ६ ॥ अथवा बंधिया देख जीवां प्रति। करुणा मन मुनि ल्यायो रे लो ॥ छुडावे वलि अनु-मोदै। तो चौमसी आरित्र जायो रे लो ॥ भ ॥१०॥ चूलनी प्रिया श्रावक मोटो। पोसा में सुखदायो रे लो ॥ पूत्र तीन मुख आगल मरता। देखि नांहि छुडायो रे लो ॥ भ ॥ ११ ॥ माता मरती देखि पोसा मे। ऊठ्यो छुड़ावण कांमो रे लो ॥ भांगो पोसो व्रत नेम कह्यो। उपाशक दशामे आंमो रे लो ॥ ॥ १२ ॥ चम्पा नगर तणां व्योपारी। जहाज भरी समुद्रे जावे रे लो ॥ एक देव तव करण परीक्षा। तिण अवशर तिहां आवे रे लो ॥ भ १३ ॥ अरणक श्रावक बैठो तिणमें। देव कहै समजायो रे लो ॥ सहु मनुष्य सहित ये जहाज डबोऊं। मान हमारी

बायो रे लो ॥ श्र ॥ १४ ॥ जो तूं सुख सूं धर्म छोड्यो कहै। तो सहु जीव बच जायो रे लो ॥ हुम सांभल श्रावक दृढ़ मन करि। धर्म ध्यान चित्त ध्यायो रे लो ॥ श्र ॥ १५ ॥ डिगायो डिगयो नहिं श्रावक। करुणा मोह न ल्यायो रे लो ॥ उपशर्ग दूर कियो तब निरजर। सुरेन्द्र तास सरायो रे लो ॥ श्र ॥१६॥ प्रिय रूप करि कर जोडो सुर। बोल्यो इह विधि बायो रे लो ॥ प्रिय धर्मी दृढ़ धर्मी तूं सांचो ए सप्तम अंग रै मांयो रे लो ॥ श्र ॥ १७ ॥ श्रीजिन मुख सुं सूत्र आख्यो। स्नेह राग दुःख दायो रे लो ॥ कर्म बीज राग द्वेष बेहूं तज। जो शिव सुखनीं चहायो रे लो ॥ श्र ॥१८॥ जे संसारिक जीवांनी करुणा। करै उपकार स्नेह ल्यायो रे लो ॥ ते उपकार संसार तणो छै। जिन धर्म नहीं तिण मांयो रे लो ॥ श्र ॥१९॥ जीव जीवै ते दया म जाणों। मरै ते हिन्सा नाह्यों रे लो ॥ मारण वालो हिन्सक पापी। नहीं मारै ते दया सुखदायो रे लो ॥ श्र ॥ २० ॥ यह संसार समुद्र थकी तिर। बंछ तू तिरणों परायो रे लो ॥ गुलाब कहै धन्य ते नर जाणों। जे रागरु द्वेष खपायो रे लो ॥ श्र ॥ २१ ॥

॥ अथ दया धर्म वर्णन ढाल ॥

नाथ कैसे गज को फंद छुडायो ॥ तथा ॥ आवत मेरी गलियन में गिरधारी ॥ इस चालमें ॥

करो तुम दया धर्म सुखकारी । यातैं लहदी होय निस्तारी ॥ करो॥ ए आंकडी ॥ पृथिवी अप्प तेऊ बायु बनस्पति । त्रस जीव अधिक अपारी ॥ ए षटकाय हणों मत कोई । जिन आगम अधिकारी ॥ करो ॥ १ ॥ सर्व प्राण भूत जीव सत्व प्रति । नहिं हणवा सुविचारी ॥ दंडे करि ताडवा नहिं त्यानैं । ते न अज्झावियव्वा कह्यारी ॥ करो ॥ २ ॥ न पारे घेतव्वा चाकर तणी परे । किणही कार्य मंझारी ॥ न परितापवा पीडा देइनैं ॥ बलि किलामना न करणी त्यांरी ॥ करो ॥ ३ ॥ उपद्रव न देणों किणही जीवनें । इम भाख्यो जगतारी ॥ तीन कालना जिननी ये वाणी ॥ द्वितीय सुयगडाङ्ग अहारी ॥ करो ॥ ४ ॥ इमहिज प्रथम अङ्गमें भाख्यो । जोवो नयन उघारी । जीव हिन्सा कियां पाप घणेरो मत हणों एम बिचारी ॥ करो ॥ ५ ॥ गौतम पूछयो पंचम अङ्गे । पृथ्वी हात मझारी ॥ लेतां वेदन कितनी होवै । जिन कहै दृष्टान्त उदारी ॥ करो ॥ ६ ॥ एक पुरष कोई जन्म नो

बांधो । पगहींण खोण काया सारी ॥ जन्म नो बहरो जन्म नो गूंगो । तन में रोग अपारी ॥ करो ॥ ७ ॥ तरुण पुरुष तसु खडग भाले करि । छेदै भेदै क्रोध धारी ॥ वेदना होवै अंध पुरुष नैं । छेद्यां भेद्यां तिण-वारी ॥ करो ॥ ८ ॥ तिणथी अधिक कष्ट पृथ्वी नें । लेतां हाल मझारी ॥ इम थावर पांचूं प्रति वेदन आगम में अधिकारी ॥ करो ॥ ९ ॥ निगोद जमींकंद वनस्पति को । सुनिये छिव विस्तारी ॥ अग्र सूई पै आवै तिणमें ॥ श्रेण असंख्य कह्यारी ॥ करो ॥ १० ॥ इक इक श्रेणि में प्रतर असंख्या । प्रतर इक मझारी ॥ गोला असंख्य हैं इक इक गोले शरीर जीव अनन्ता । कहतां न आवे पारी ॥ इम जाणी हिन्सा नहिं करिये । जिन धर्म मर्म विचारी ॥ करो ॥ १२ ॥ धुर आस्रव धुर पापनुं स्थानक । दुरगति दुःख दातारी ॥ आरंभ छांडि दया दिल धरिए । जिम पामो भव पारी ॥ करो ॥ १३ ॥ हिन्सा कियां मे धर्म न किमपि । आगम मांहि सुनारी ॥ एकेन्द्री पंचेन्द्री पोख्यां । धर्म पुन्य नाहिं अनारी ॥ करो ॥ १४ ॥ देवल पडिमा करै करावे । पृथ्वी काय विडारी ॥ कह्यो अर्हत अबोधनूं कारण । धुर अङ्ग जगतारी ॥ करो ॥ १५ ॥ जीव हणिया मे दोष न होवे । हणियां न दोष उचारी

॥ ए आर्य्य अनार्य्य नां वचन कह्या जिन । आचारंग संभारी ॥ करो ॥ १६ ॥ इम जाणी परम धर्म ए करिये अहिंसा सुखकारी ॥ गुलाबचंद कहै धन्य शुद्ध साधु । चरण कमल बलिहारी ॥ करो ॥ १७ ॥

॥ कलश ॥

सुखकार श्रावक धर्म करिये ब्रत द्वादश रूपहो। संसार पारावार तरिये, कह्यो श्रीजिन भूप हो॥ अविरत सेयां अनें सेवायां, अनुमोद्या हुवै पापहो। गुलाब कहै इम शुद्ध श्रद्धो, करो श्रीजिन जाप हो ॥ १ ॥

॥ इति संपूर्णम् ॥

❀—हिन्दी साहित्य का चमकता हुआ रत्न —❀

इस में हिन्दीके आदि कवि चन्दवरदाई से लेकर वर्त्तमान तक के, प्राचीन और आधुनिक मिलाकर २५१ कवियों की चुनी हुई अनूठी भावपूर्ण उत्तमोत्तम कविताओं का ऐसा अभूत पूर्व संग्रह है जो कि प्रायः, सभी प्रकार की रुचिवाले पाठकों के लिये एकसा रुचिकर मनो-रञ्जक एवं शिक्षाप्रद है। इसके अतिरिक्त अन्त में ४५ पृष्ठों का साहित्य कुञ्ज दिया गया है जिसको पढ़कर चित्त प्रसन्न हो जाता है। सम्पादन बड़ी योग्यता से किया गया है। और कवितायें भी ऐसी २ चुनकर दी गयी कि पढ़ते ही चित्त पर असर कर जाती है। तथा साधारण से साधारण मनुष्य के समझ में अच्छी तरह आजाती है। कण्ठस्थ कर लेने से मामुली आदमी भी सभाचातुर एवं विद्वान गिना जाने लगता है। यह हम जोर के साथ कह सकते हैं कि इतना बडा संग्रह इसके पहिले प्रकाशित नहीं हुआ जिसमें कि ८०० वर्ष के कवियों की कविता एकही पुस्तक में मिल सकें। बनारसीदास, भूधरदास, किसन, वृन्दावन इत्यादि प्रसिद्ध २ जैन कवियों की रुचिर रचनाओं का ऐसा अनूठा संग्रह है जो कि पढ़ने से चित्त वैराग्यमय हो जाता है। सारांश यह की आजतक की निकली हुई इस प्रकार की पुस्तकों से यह पुस्तक सभी अंशो में श्रेष्ठ है। छपने के पहले ही ३०० अग्रिम

ग्राहकों का हो जाना भी इसकी उत्तमता का सुपुष्ट प्रमाण है अतएव प्रत्येक कविता-प्रेमी के लिये यह अवश्य संग्रह योग्य है। यदि आपको कविता से कुछ भी प्रेम हो, और सैकड़ों कविता-पुस्तकों के बंडल को एक ओर रख कर एक ही पुस्तक से अपनी इच्छा की तृप्ति करना चाहते हों तथा मनोरंजन के साथ २ शिक्षा प्राप्ति की भी कामना हों, तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़िये। पृष्ठ संख्या ५६० मूल्य सादी कपड़े की जिल्द ३॥), रेशमी सोनहरी जिल्द ४)

ब्रह्मचर्य्य का अद्वितीय आदर्श—

सुदर्शन-चरित्र।

यह उन्हीं स्वनाम धन्य, प्रात स्मरणीय सेठ सुदर्शन का जीवन चरित्र है जिन्होंने मरणान्त दुःख सहकर भी अपने ब्रह्मचर्य्य व्रत को भंग नहीं किया। पहले वे कपिला की कसौटी में कसे गये, फिर अभया रानी ने अभय होकर अपनी काम कतरनी से जाचा, इस के बाद उन्होंने (तीन दिन तक अनशन रहकर) वेश्या-हथौड़ी के हाव भाव की चोटें खायी और अन्त मे भूतनी के भभकते हुए उपद्रव-अग्नि कुण्ड मे तपाये गये, किन्तु खरे सोने की भांति उनकी प्रभा बढ़ती ही गई। इस पुस्तक को यदि आप आद्योपान्त पढ़ जायंगे तो फिर कभी कामिनी की काम कतरनी के दावपर न आयंगे। ऐसी विलक्षण पुस्तक आपने शायद आजतक कभी नही पढ़ी होगी। रोचकता के कारण इसके पढ़ने में उपन्यासका सा आनन्द आता है।

अगर आप व्यभिचार के विषधर कीडे से देश को बचाना चाहते हैं, बृद्धविवाह का मूलोच्छेद् करना चाहते हैं, तो इस आदर्श महापुरुष के जीवन चरित्र का प्रचार कीजिये। जिसको पढ़कर मनुष्य सच्च-रित्र, बलवान तथा ऐश्वर्य्यवान बनने के साथ २ ब्रह्मचर्य्य के महत्त्व को जान सकता है और संसार के झूठे आनन्द को छोड़; जीवन के सच्चे पवित्र आनन्दामृत का पान कर मानव जीवन को सफल बना

सकता है। यदि स्त्री चरित्र के गूढ़ रहस्यों को जानना चाहते हैं तो इस आदर्श महापुरुष के जीवन चरित्र को अवश्य पढ़िये।

उपयुक्त स्थानों में रंग बिरंगे १२ चित्र दिये गये हैं जिन में २ तो बहुत ही बढ़िया तीन रंगे हैं और बाकी भिन्न भिन्न रंगों में इक रंगे हैं जिनके अवलोकन मात्र से ही कथा का आशय चित्त पर अङ्कित हो जाता है। चित्रों की सफाई छपाई, अत्यन्त मनोरम होने के कारण पुस्तक की शोभा विचित्र बढ़ गई है। मूल्य १॥) रेशमी सुनहरी जिल्द सहित २)

धूर्ताख्यान ॥

इस मे पांच महाधूर्तों के पांच विचित्र आख्यान हैं, जो आश्चर्य और मनोरंजकता में एक दूसरे से बढ़ चढ़ कर हैं। पुस्तक ऐसी विचित्र है कि आनन्द से आश्चर्य की मात्रा बहुत अधिक बढ़ जाती है। आप कैसे ही गंभीर प्रकृति के मनुष्य क्यों न हों इस के किसी २ स्थल को पढकर हांसी को किसी तरह नही रोक सकेंगे। आख्यानों का आशय भली प्रकार प्रकट करने के लिये उपयुक्त स्थानों में विविध रङ्गों के ६ हाफटोन चित्र भी दिये गये हैं। यह हिन्दी साहित्य में अपने ढङ्ग की पहली पुस्तक है। मूल्य केवल ॥)

वीराङ्गना वीरा ॥

इस पुस्तक में उदयपुर के महाराणा उदयसिंह की उपपत्नी "वीरा" के उस समय के अद्भुत वीरत्व का वर्णन किया गया है जिस समय महाराणा ने सम्राट अकबर को सात बार युद्ध में पराजित किया था। यदि वीर क्षत्राणियों के रण-कौशल और अद्भुत कृत्यों का ऐतिहासिक वर्णन पढ़ना हो तो इस पुस्तक को अवश्य मंगाइये। इसकी पद्य रचना वर्त्तमान लोकरुचि के अनुकूल खड़ी बोली में हरीगीतिका (भारत भारती के तरह के) छन्दों में की गई है। कविता सरस एवं भाव पूर्ण है। प्रत्येक पद से वीर रस चुआ पड़ता है। मूल्य ॥)

साहित्य परिचय ।

इस पुस्तक में साहित्य-काव्य के प्रायः सभी अङ्गों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है जिन के जानने से साधारण से साधारण आदमी भी कविता के मर्म को अच्छी तरह समझ सकता है। यह पुस्तक काव्यप्रेमियों के लिये हृदय का हार, विद्यार्थियों के लिये पाठ्य पुस्तक और सर्व साधारण के लिये साहित्य क्षेत्र तक पहुंचाने वाली शीघ्रगामी मोटर है। मूल्य १)

नित्य नियमावली ।

इस पुस्तक के विषय मे अधिक लिखने की कोई आवश्यक्ता नहीं। क्योंकि बहुत थोड़े समय में इसका दूसरा संस्करण ही इसके सर्वोप-योगी होने का प्रमाण है। जहाँ अधिकांश पुस्तकें बिना मूल्य वीतरण होती हो वहाँ मूल्यवाली पुस्तक धड़ा धड़ बिकने लगे तो समझना होगा कि पुस्तक उपयोगी एवं लोक प्रिय है इस में सन्देह नहीं। प्रथमावृति की अपेक्षाय इस प्रस्तुत आवृति में ३२ पृष्ठ अधिक है। कितनी ही उपदेशिक एवं तपस्वियों के गुणों की ढालें इस में संग्रह कर दी गई है। यही इस द्वितीयावृति की प्रथमावृति से विशेषता हैं। इतने पर भी दाम नहीं बढ़ाया गया। नित्य-नियम के लिये यह एक ही पुस्तक प्रयाप्त हैं। श्रावक मात्र के पास इस की एक २ कापी रहनी परमावश्यक है। श्रावक के नित्य स्वाध्याय करने योग्य है। बिना जिल्द वाली पुस्तकें कम बिकने के कारण इसबार सिर्फ जिल्द वाली ही तय्यार कराई गई है। पृष्ठ संख्या २२४ मूल्य रेशमी सुन-हरी जिल्द ॥।)

मिलनेका पता—

"ओसवाल प्रेस"—१६, सीनागोग स्ट्रीट, कलकत्ता।